राधामोहन गोकुल जी

ईश्वर का बहिष्कार

ईश्वर का बहिष्कार

ईश्वर का बहिष्कार

राधामोहन गोकुलजी

सम्पादक
कात्यायनी/सत्यम

राहुल फाउण्डेशन
लखनऊ

ISBN: 978-81-87728-33-7

मूल्य : रु. 20.00

पहला संस्करण : जनवरी, 2006
दूसरा (संशोधित) संस्करण : जनवरी, 2008

प्रकाशक : राहुल फ़ाउण्डेशन
69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226 006

टाइपसेटिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फ़ाउण्डेशन

मुद्रक : क्रिएटिव प्रिण्टर्स, 628/एस-28, शक्तिनगर, लखनऊ

EESHWAR KA BAHISHKAR ***by Radhamohan Gokulji***

अनुक्रम

श्री राधामोहन गोकुलजी हिन्दी के उन गिने हुए लेखकों में हैं, जिन्होंने धार्मिक, सामाजिक और नैतिक विषयों पर स्वतंत्र विचार किया है और उन विचारों का निडर होकर पालन किया है। आपके विचारों में मौलिकता है, गहरा अंन्वेषण है और आदमी को क़ायल करने वाली सच्चाई है। आप जात-पाँत, छूत-छात, धर्म-सम्प्रदाय इन सभी को समाज के लिए घातक और उसकी स्वाभाविक प्रगति में बाधक समझते हैं और आपकी दलीलों के सामने सिर न झुका देना कठिन है। हम तो यही कहेंगे कि आपके रूप में महात्मा चार्वाक् ने अवतार लिया है।

—प्रेमचन्द

प्रस्तावना

राधामोहन गोकुलजी और उनका कृतित्व

राधामोहन गोकुलजी भारतीय राष्ट्रीय जागरण के एक अनन्य शलाका पुरुष थे। उनके कृतित्व से परिचय भारत में जुझारू भौतिकवादी चिन्तन की विस्मृतप्राय गौरवशाली परम्परा का पुनःस्मरण है।

राधामोहन गोकुलजी का जन्म 15 दिसम्बर 1865 को इलाहाबाद के पास भदरी रियासत में हुआ था। जहाँ उनके पूर्वज तत्कालीन जयपुर राज्य के खेतड़ी से आ बसे थे। बौद्ध भिक्षुओं के एक आवास विहार में प्रारम्भिक शिक्षा के बाद गोकुलजी ने आगरा के सेण्ट जॉन्स कालेजिएट स्कूल में अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त की। एक परम्परागत, धर्मभीरु व्यापारी परिवार में जन्मे गोकुलजी का विवाह मात्र तेरह वर्ष की ही अवस्था में कर दिया गया था। शिक्षा के बाद नौकरी की तलाश में वह इलाहाबाद आये और बीस रुपये मासिक पगार पर एक सरकारी महकमे में काम करने लगे। वहाँ जब एक अंग्रेज़ अधिकारी ने उन्हें अपमानित किया तो उसकी पिटाई करने के बाद उन्होंने नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया और फिर आजीवन चाकरी न करने का संकल्प लिया। 1883 में पत्नी के निधन के बाद वह आजीवन विधुर रहे।

गोकुलजी 1880 के आसपास ही 'हिन्दी प्रदीप' के सम्पादक बालकृष्ण भट्ट और भारतेन्दु मण्डल के एक अन्य स्तम्भ प्रताप नारायण मिश्र के सम्पर्क में आ चुके थे। 1882 में जाति प्रथा और कूपमण्डूकता पर चोट करता हुआ उनका लेख 'सुसभ्य-सम्मिलन' 'हिन्दी प्रदीप' में प्रकाशित हो चुका था। औपनिवेशिक दासता के विरुद्ध आजीवन संघर्ष का संकल्प भी तब तक उनके मन में स्थिर हो चुका था। रूढ़ियों, अन्धविश्वासों और अज्ञानता की मानसिक दासता में भारतीयों की जकड़न को गोकुलजी औपनिवेशिक गुलामी का एक प्रमुख कारण मानते थे। इसलिए उन्होंने मुख्यतः लेखन कर्म और पत्रकारिता को हथियार बनाकर राष्ट्रीय जागरण और प्रबोधन के मोर्चे पर डटने का निर्णय लिया। लेकिन वे मात्र अध्ययन कक्षों के व्यक्ति नहीं थे। लेखन-सम्पादन के साथ ही उनकी राजनीतिक सक्रियता भी आजीवन बनी रही। कांग्रेसी राजनीति के सीमान्तों का अतिक्रमण करते हुए वे सशस्त्र क्रान्ति के उत्कट

प्रचारक और पक्षधर बने और फिर 1920 के दशक में कम्युनिज़्म के प्रचार और कम्युनिस्ट पार्टी के निर्माण में अहम भूमिका निभायी।

अपने समय की सभी महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में विपुल लेखन करने के साथ ही गोकुलजी ने 'ब्राह्मण', 'समाज सेवक' और 'प्राणवीर'—इन तीन पत्रिकाओं का लम्बे समय तक सम्पादन किया। हिन्दी की राष्ट्रीय जनवादी पत्रकारिता की जो धारा बालकृष्ण भट्ट से लेकर गणेशशंकर विद्यार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी और प्रेमचन्द से होते हुए पराड़कर तक निरन्तर प्रवहमान बनी रही, उसमें गोकुलजी का भी अनन्य स्थान है।

अपनी विचारधारा में गोकुलजी ने हिन्दू धर्म की रूढ़ियों का विरोध करते हुए पहले आर्य-समाज तक की यात्रा की। बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक तक वे कट्टर निरीश्वरवादी, जुझारू भौतिकवादी और उत्कट जनवादी बन चुके थे। और फिर तीसरे दशक के प्रारम्भ तक वे कम्युनिज़्म के उसूलों के क़ायल होकर उनके धुआँधार प्रचार में लग चुके थे।

राष्ट्रीय जागरण के काल में आद्यन्त एक धारा ऐसी थी जो विदेशी शासन का विरोध करते हुए अपने अतीत की विरासत के प्रति सर्वथा अनालोचनात्मक, सर्वसमावेशी और महिमामण्डनात्मक रुख़ अपनाती थी और पश्चिम की वैचारिक विरासत के प्रति मुख्यतः उसका रवैया निषेधवादी हुआ करता था। दूसरी ओर, तथाकथित 'बंगाल रिनेसां' के समय से ही एक धारा ऐसी थी जो सभी वैज्ञानिक, प्रगतिशील, जनवादी मूल्यों का स्रोत मात्र पश्चिमी चिन्तन परम्परा में देखती थी, और उनका आलोक भारत तक लाने का श्रेय ब्रिटिश शासन को देती थी। भारतीय चिन्तन परम्परा की भौतिकवादी धारा से या तो वह अपरिचित थी या उसके प्रति उपेक्षा का रुख़ अपनाती थी। राधामोहन गोकुलजी ऐसे विचारक थे जिन्होंने भारतीय चिन्तन-परम्परा की प्रतिगामी धारा को खारिज करते हुए उसकी प्रगतिशील धारा की विरासत को आत्मसात किया तथा साथ ही, पाश्चात्य चिन्तन के क्रान्तिकारी, जनवादी, वैज्ञानिक और प्रगतिशील मूल्यों को भी आत्मसात करने पर पुरज़ोर ढंग से बल दिया। औपनिवेशिक शासन के उग्र प्रतिरोध के साथ ही उन्होंने तमाम पुरातनपंथी, धार्मिक रूढ़ियों-परम्पराओं-अन्धविश्वासों पर निर्भीक और मारक चोट की। उनके समय में ऐसा साहस अन्यत्र नहीं दीखता। यूरोपीय पुनर्जागरण के महानायकों की तरह, वृद्धावस्था तक गोकुलजी अपने विचारों के लिए हर क़ीमत चुकाने को उद्यत रहे। कई-कई बार उन्होंने जेल-यात्राएँ की, यंत्रणाएँ भोगीं और निजी स्तर पर भी अनेकशः त्रासदियाँ झेली, लेकिन उनकी प्रतिबद्धता और सक्रियता अटल बनी रही। सितम्बर, 1935 में बुन्देलखण्ड के सुदूर खोही अंचल के गाँवों में क्रान्तिकारी जनजागरण का

काम करते हुए ही उन्होंने आखिरी साँस ली।

राधामोहन गोकुलजी ने निरीश्वरवाद और कम्युनिज़्म के प्रचार, अन्धविश्वास और जात-पाँत के विरोध, स्त्रियों की पराधीनता, आर्थिक वैषम्य, औपनिवेशिक शोषण से लेकर विश्व क्रान्तियों और समकालीन समस्याओं तक—सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक-ऐतिहासिक-दार्शनिक प्रश्नों पर विपुल लेखन किया। उनकी रचनाओं की बेकली, उनका विद्रोही आह्वान, उनके अकाट्य तर्क आज भी पाठकों में उत्तेजना और बेचैनी पैदा कर देते हैं। गोकुलजी राष्ट्रीय जागरण के दौर में प्रबोधन की धारा के अग्रधावक थे। उनकी रचनाओं में दिदेरो और वाल्तेयर जैसे प्रबोधनकारी फ्रांसीसी दार्शनिकों तथा चेर्नीशेव्स्की और बेलिंस्की जैसे रूसी क्रान्तिकारी जनवादी विचारकों जैसी आग दिखाई देती है। इस मायने में वह उस अग्निधर्मी परम्परा के प्रवर्तक थे, जिसे उनके बाद राहुल सांकृत्यायन ने आगे बढ़ाया।

गोकुलजी के दयानन्द सरस्वती, लाला लाजपत राय, मदन मोहन मालवीय और महात्मा गाँधी से लेकर रासबिहारी बोस, शचीन्द्रनाथ सान्याल, चन्द्रशेखर आज़ाद और भगतसिंह तक से निकट सम्पर्क रहे थे। भगतसिंह और शिव वर्मा आदि को वैज्ञानिक समाजवाद के विचारों तक पहुँचाने में उनकी अहम भूमिका रही थी। साहित्य और पत्रकारिता की दुनिया में प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट से लेकर श्यामसुन्दर दास, गणेशशंकर विद्यार्थी, महादेव प्रसाद सेठ, मुंशी नवजादिक लाल श्रीवास्तव, शिवपूजन सहाय, किशोरी दास वाजपेयी, निराला, प्रेमचन्द आदि से न सिर्फ उनका सम्पर्क-सान्निध्य रहा, बल्कि उनके कई कनिष्ठ समकालीन उन्हें अपना प्रेरणा-पुरुष मानते थे। अब इससे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण विडम्बना भला और क्या हो सकती है कि क्रान्तिकारी परिवर्तन के सांस्कृतिक और राजनीतिक मोर्चे पर सन्नद्ध आज की युवा पीढ़ी अपने ऐसे महान पूर्वज के व्यक्तित्व और कृतित्व से लगभग अपरिचित है। परिवर्तन के नये मार्ग के अन्वेषियों-निर्माताओं के लिए यह परमावश्यक है कि वे अतीत के प्रगतिशील और जनपक्षधर चिन्तन और सामाजिक प्रयोगों तथा उनके प्रवर्तक इतिहास-पुरुषों की परम्परा से परिचित हों। इतिहास की उपेक्षा करके इतिहास-निर्माण का काम नहीं किया जा सकता। इस मायने में, भारत में और विशेषकर हिन्दी क्षेत्र में अभी काफ़ी कुछ करने को पड़ा है। राधामोहन गोकुलजी के विस्मृतप्राय कृतित्व से आज की पीढ़ी को परिचित कराना एक बेहद ज़रूरी उद्यम है। इस दिशा में कर्मेन्दु शिशिर ने अपनी दो महत्वपूर्ण पुस्तकों—'राधामोहन गोकुल की प्रतिनिधि रचनाएँ' और 'राधामोहन गोकुल और हिन्दी नवजागरण' द्वारा एक महत्वपूर्ण पहल की है। इसकी जितनी भी प्रशंसा की जाये, कम है। पर ज़रूरत इस बात की है कि इस उपक्रम को आगे बढ़ाया जाये। यह ज़िम्मेदारी अब युवा पीढ़ी की है।

साहित्य के आत्ममुग्ध वृद्ध "शिखर-पुरुषों" से इसकी अपेक्षा नहीं की जा सकती।

हम राधामोहन गोकुलजी के लेखों के इन चार संकलनों के जरिए इतिहास की विरासत से आज की युवा पीढ़ी को परिचित कराना चाहते हैं। यह नये भारत के क्रान्तिकारी नवजागरण और प्रबोधन का एक ज़रूरी कार्यभार है। इनमें से तीन पुस्तिकाओं में गोकुलजी के वे लेख संकलित हैं जो धार्मिक-सांस्कृतिक-सामाजिक-राजनीतिक रूढ़ियों-पूर्वाग्रहों की आलोचना और निरीश्वरवाद की स्थापना पर केन्द्रित हैं। चौथा संकलन स्त्री-प्रश्न पर केन्द्रित है। स्त्री-प्रश्न पर केन्द्रित गोकुलजी के लेखों में जो प्रचण्ड उग्रता और दुर्दान्त निर्भीकता है, वह उनके समय में तो दूर, आज भी देखने को नहीं मिलती। साथ ही, उनका अकाट्य विश्लेषण भी पाठक को विस्मित कर देता है।

हमें विश्वास है कि युवा पीढ़ी हमारे इस प्रयास का स्वागत करेगी और अपने इतिहास एवं परम्परा के गौरवशाली प्रगतिशील पक्षों को उद्घाटित करने के महाउद्यम में अपनी भी ऊर्जा लगाने के लिए प्रवृत्त होगी।

— कात्यायनी
सत्यम

ईश्वर का बहिष्कार

(1)

प्रकृतिवादी और केवल काल्पनिक भावनाओं में बड़ा अन्तर है। एक तो गुलाब के फूल को प्रत्यक्ष देखता है-उसकी बनावट का ज्ञान और रूप-रंग आदि अनेक गुणों की जानकारी रखता है। यदि उससे गुलाब के सम्बन्ध में कोई प्रश्न करें, तो वह उसके अस्तित्व के प्रमाण में सीधी और वास्तविक दलीलों से काम लेगा और गुलाब के फूल का यथार्थ ज्ञान भी करा देगा। लेकिन दूसरा गुलाबी रंग के वर्णन करने को तैयार होता है और उस दशा में, जबकि उसने स्वयं गुलाब को कभी नहीं देखा तो सीधा कोई प्रमाण नहीं दे सकता। परोक्ष और अव्यावहारिक प्रमाणों से जो वह काम लेगा तो निस्सन्देह कदम-कदम पर ठोकर खायेगा। यह तो उस दशा में होता है, जबकि गुलाब कोई वस्तु है और गुलाबी रंगत, चाहे गुलाब से भिन्न द्रव्यहीन अवस्था में उसका देखना असम्भव हो, कोई ऐसी चीज है, जिसे हम आँखों से देख सकते हैं।

ईश्वर एक ऐसा कल्पित पदार्थ है, जिसे कभी किसी ने अपनी ज्ञानेन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं किया इसलिए कि उसका सर्वथा अभाव है। ईश्वर कोई ऐसी चीज़ है ही नहीं। जिस पदार्थ का अत्यन्त अभाव है, उसका अस्तित्व कभी हो ही नहीं सकता। संसार में जितनी वस्तुएँ हैं, वे चाहे कितनी भी सूक्ष्म क्यों न हों, सबका प्रादुर्भाव प्रकृति से होता है; प्रकृतिजन्य सारे पदार्थ किसी न किसी दशा में इन्द्रिय ग्राह्य होते हैं। उदाहरण के लिए जल को लीजिए। यह भाप की सूरत में आँखों को दिखाई देता है। यदि यह और विश्लिष्ट होकर सूक्ष्मतम वायव्य (Gascous) हो जाये अर्थात् गैस का रूप धारण कर ले, तो भी वह इन्द्रियों द्वारा जानने का विषय होगा। फिर देखिए बिजली बहुत ही सूक्ष्म रूप की एक वस्तु है; आँख, कान, नाक द्वारा इसे नहीं जान सकते। लेकिन बिजली की उत्पत्ति प्राकृत पदार्थों से होती है; और जब हम उसका व्यवहार किसी रूप में करते हैं तो द्रव्यों में उसे स्पष्ट देखते हैं कि काम कर रही है।

यह बात 'ईश्वर' नाम के पदार्थ में नहीं है क्योंकि उसको प्रकृति का निर्माता, संचालक और नाशकर्ता माना जाता है। प्रकट है कि जो वस्तु नहीं है—केवलमात्र एक

काल्पनिक भाव है—उससे वास्तविक पदार्थ का बनना, बनाना या प्रकट हो जाना प्रत्यक्ष ही एक निर्मूल, अशुद्ध एवं मानव विज्ञान-विरुद्ध एक कल्पना मात्र है। यदि हम इसे बल, शक्ति किंवा गति मानें तो भी हम द्रव्य के सिवा अन्यत्र इसे कहीं भी नहीं देखते। इसी तरह गुलाबी रंग भी कभी किसी ने भिन्न, स्वतंत्र कहीं न देखा होगा, जैसा ऊपर कहा गया है। सारांश यह कि प्रकृति से अलग कभी कोई शक्ति या कोई और भाववाचक पदार्थ नहीं देखा गया । मन, ज्ञान, बुद्धि आदि सभी एक प्रकार के गुण या भाववाचक संज्ञाएँ हैं। इनका भी बोध हमें प्रकृति के ही द्वारा होता है। किसी खास दशा का निरीक्षण करके हम उसको एक नाम दे देते हैं; परन्तु वस्तुतः यह ऐसी कोई चीज नहीं है, जिसे हम प्रकृति से भिन्न मान लें।

ईश्वर के मानने वाले उसे सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, सर्वव्यापी, इत्यादि सभी गुणों से विभूषित करते हैं। यह लोग यह नहीं सोचते कि शक्तिमान् कहने से यह एक गुण 'शक्ति' का दूसरी चीज में आरोप करते हैं, तो दूसरी चीज कोई वस्तु होनी चाहिए और ईश्वर कोई वस्तु नहीं है। यही तर्क न्याय, दया आदि की बाबत भी किया जा सकता है। जीव को एक प्रकार से हम शरीर में देखते हैं, लेकिन बिना शरीर के कोई जीव ऐसा पदार्थ देखा नहीं जाता। सम्भव है कि रसायनशास्त्र के अनुसार जीव भी दो या अधिक चीजों के मेल से उत्पन्न कोई स्थिति विशेष हो। मनोवैज्ञानिक सिद्ध कई कुतूहलजनक घटनाओं के देखने पर जान पड़ता है कि शंकर स्वामी को यह खयाल हुआ था कि ईश्वर तो कोई चीज नहीं है। मगर जीव में कई विलक्षण शक्तियाँ हैं। इसलिए जीव और ईश्वर दोनों एक ही पदार्थ हैं। इस तरह पर शंकर स्वामी ने संसार को काल्पनिक ईश्वर के मानने से बहुत दूर तक हटाया—'अहंब्रह्मास्मि' 'तत्वमसि' 'सर्वखल्विदं ब्रह्म' का पाठ पढ़ाया। वेदान्त भी, जहाँ तक ईश्वर की मिथ्या कल्पना का सम्बन्ध है, एक खासा नास्तिकवाद है, जो संसार को बहुत ठीक मालूम होता जा रहा है। इनके विचार के लोगों की वृद्धि होती जाती है।

ईसाइयों ने खुदा की पवित्रात्मा को चिड़िया के रूप में पानी पर तैरा कर, उसका मरियम के साथ सहवास कराकर अथवा तूर-पहाड़ पर जलती आग की शकल में मूसा को दिखला कर यही सिद्ध किया है कि बिना वस्तु के किसी शक्ति का स्थिर रहना असम्भव है। कुरान ने खुदा को एक बड़े मकान में बिठाकर तख्ती पर लिखने और फरिश्तों द्वारा सारा काम अंजाम देने का खयाल इसलिए पैदा किया कि बिना किसी व्यक्त पदार्थ के यह सारे गुण उसमें नहीं हो सकते, जिन्हें मुसलमान लोग खुदा में मानते हैं। 'कुन' का कहना बिना जिह्वा के असम्भव है, और जिह्वा से खुदा भी प्रकृतिजन्य एक पदार्थ बन जाता है।

सातवें आसमान पर मुहम्मद साहब का बुराक पर चढ़कर जाना, रिजवां का इन्हें

बहिश्त दिखलाना, महात्मा मसीह का आसमान पर उठाया जाना तथा गरुड़ पुराण आदि की कही हुई स्वर्गों और नरकों की कल्पनाएँ, सभी इस बात की साक्षी हैं कि धर्म केवल कल्पना-मात्र हैं। इनसे सिवा लोगों को मिथ्या झगड़ों में फँसा कर बेकार बनाने के, कोई भी लाभदायक काम नहीं हो सकता। इसलिए मनुष्य जितनी जल्दी ईश्वर, खुदा या गॉड और धर्म, मजहब या रिलीजन को त्याग दें उतना ही अच्छा। मनुष्य जाति के कल्याण के लिए ही मैंने इन विचारों को प्रकट करने का साहस किया है। आशा है, विचारशील पुरुष इससे लाभ उठावेंगे।

लोग जो समय रोजे, नमाज, संध्या-पूजा और प्रार्थना में नष्ट करते हैं, उसे यदि समाज के किसी उपयोगी काम में लगावें, तो अपने भाइयों का अपना बहुत कल्याण कर सकते हैं। यदि संसार से ईश्वर और धर्म के व्यर्थ गपोड़े मिट जायें, तो लोगों में फैले हुए झगड़ों का अन्त हो जाये। जब कोई मूर्ख से मूर्ख पिता भी अपना वश चलते अपने पुत्रों को नहीं लड़ने देता तो, यदि वास्तव में कोई खुदा होता और सर्वशक्तिमान् खुदा होता—तो वह अपनी सन्तानों को कदाचित् अपने नाम पर कुत्तों की तरह न लड़ाता। यदि खुदा शक्ति और बुद्धि वाला होता तो भी वह एक ही धर्म सारे संसार के लिए बनाता—सारे संसार की एक ही बोली और एक ही संस्कृति होती—जिससे इन झगड़ों का बीज ही न पड़ता। जो खुदा झगड़ों का बीज बोता हो, जो धर्म मनुष्यों के लिए वास्तविक हितकर न हो, वह यदि वास्तव में कुछ हो भी तो विषवत् त्याज्य ही है।

फ्रांस का विद्वान वाल्टेयर कहता है If God did not exist, it would be necessary to invent Him for the people must have a religion.

अर्थात्—यदि ईश्वर न भी हो तो भी हमें एक ईश्वर का आविष्कार करना जरूरी है, क्योंकि जनता को धर्म की जरूरत है। हमें इस पण्डित की बात पर हँसी आती है। पहले तो उपर्युक्त वाक्य के पढ़ने से प्रकट होता है कि वाल्टेयर को स्वयं ईश्वर नामक किसी पदार्थ की सत्ता का पूर्ण विश्वास न था, इसलिए वह मूर्ख जनता को धोखे में डालने की नीयत से एक ईश्वर की कल्पना करने के फेर में पड़ा। दूसरे उसने ईश्वर के लिए Him कर्मवाचक; एकवचन पुल्लिंग, प्रथम पुरुष का प्रयोग करके उसे मर्द करार दिया। इससे प्रकट है कि वह इस अजीब जानवर को मनुष्य मानता है और मनुष्य मानने से उसकी सर्वशक्तिमत्ता, सर्वव्यापकता आदि की सारी बातें धूल में मिल जाती हैं। यही बात हिन्दू मुसलमानों के खुदा की भी है। तीसरे जनता को एक धर्म दरकार है इसलिए एक खुदा का आविष्कार करना भी जरूरी है, यह भी बड़ी मजेदार बात है। जनता ने कभी खुदा नहीं माँगा; 'वाल्टेयर' और उसी की तरह सोचने वाले भद्रपुरुषों ने ख्वामख्वाह एक खुदा गढ़कर जनता को अगणित बेहूदगियों का शिकार

बना डाला।

खुदा की ही कल्पना ने इंजील, कुरान, पुराण को रक्तरंजित इतिहास का भाण्डागार बनाया और घृणित कथाओं और भावों से मनुष्य जाति का सर्वनाश किया है। मैं तो महात्मा 'मिकाइल बेकुनिन' को सराहता हूँ, जो खुले शब्दों में मनुष्य जाति के हित के लिए वाल्टेयर को तुर्की-ब तुर्की जवाब देते हुए कहता है: If God really existed, it would be necessary to abolish Him.

अर्थात्—यदि खुदा सचमुच होता, तो भी उसे धक्का देकर निकाल देना जरूरी होता। सच है धर्म और ईश्वर ऐसी ही बुरी कल्पना है। इनसे संसार का जब तक पीछा न छूटेगा, तब तब उसका कल्याण न होगा।

ज़ब तक़ योरोप में खुदा और धर्म सदृश रद्दी काल्पनिक बातों का जोर रहा, रोमन कैथोलिक और प्रोटिस्टेण्ट निरन्तर सर फोड़ते रहे। कैथोलिकों ने शक्ति प्राप्त होने पर प्रोटिस्टेण्टों को अग्नि के हवाले किया। और प्रोटिस्टेण्टों ने अधिकार पाने पर रोमन कैथोलिकों के प्राणों की आहुति देकर अपना कलेजा ठण्डा किया। भारत में शैव-शाक्त आदि ने धर्म के नाम पर खूब कुत्ते-बिल्लियों की सी लड़ाई की। पर जिस दिन योरोप ने धर्म और खुदा के ढकोसले को छोड़ा, उसी दिन से उसमें देश-प्रेम और ज्ञान-पिपासा जाग्रत हुई। आज योरोप प्रकृति की पूजा करके सर्वत्र अपने को पुजवा रहा है।

एशिया की बरबादी के कारण धर्म और खुदा ही हैं। आज बीसवीं सदी में भी इस मूर्खता के कारण एशिया की दशा अत्यन्त सोचनीय हो रही है। जिस जाति में जितनी धर्मान्धता है, वह उतनी ही अँधेरे गर्त में पड़ी हुई है। मुसलमानों में अधिक धर्मान्धता है, इसी से उनका संसार में पतन होता जा रहा है। भारत में भी मुसलमान विद्या, बुद्धि और धन आदि सभी बातों में अत्यन्त नीचे हैं। टर्की ने इस भेद को समझा, इसलिए उसने धर्म के हानिकर बन्धन को ढीला कर दिया। अब वह समय रहते इस रद्दी ख्याल को अर्द्धचन्द्र देकर सुखी होने का प्रयत्न करेगा, यह हमारा पूर्ण विश्वास है।

यदि ईश्वर और धर्म का ब्रह्मपाश कट जाये, यदि इस 'गौर्डियन नाट' के टुकड़े हो जायें, तो संसार के धर्म-ग्रन्थों के सारे निस्सार गपोड़ों का भी अन्त हो जाये। प्रत्यक्ष और विज्ञान-सिद्ध बातों के विरुद्ध विश्वास, आचार और व्यवहार का पाप मनुष्यों में से जाता रहे—स्वर्ग के झूठे मन मोहने वाले दास्तानों और बच्चों की सी बेसर-पैर की बातों से संसार का पीछा छूट जाये। ग़ालिब ने एक जगह बहिश्त का खासा मजाक उड़ाया है। वह कहता है—

> 'हमको मालूम है जन्नत की हकीकत ग़ालिब,
> दिल को खुश रखने को ग़ालिब यह ख़्याल अच्छा है।'

किसी ने सच कहा है : Doctrine kills the life, and the living spontaneity of action. सिद्धान्तवाद जीवन को नष्ट कर डालता है और कार्य के स्वाभाविक अस्तित्व को मटियामेट कर छोड़ता है। सार यह कि व्यक्ति हो या जाति कल्पनामात्र की तरंगों से ताड़ित होकर समुद्र में डाट लगी हुई खाली बोतल के समान इधर-उधर ठोकरें खाती फिरती है, फल कुछ नहीं होता। हाँ, संसार के कितने ही मनुष्य विज्ञान की ओर ध्यान न देकर इंजील, कुरान, वेद, पुराण के पढ़ने में न जाने कितना समय खराब कर देते हैं। अच्छा हो जो इन लोगों में सुबुद्धि का संचार हो।

(2)

Ideal is but a flower, whose root lies in the material condition of existence.—Prowdhon.

सच है, आदर्श कल्पना एक पुष्प है, जिसकी जड़ जीवन की प्राकृत स्थिति में रहती है। यह नहीं कि बिना सर पैर की एक अनहोनी कल्पना हो। भला प्रत्यक्ष जगत् सत्य है, या केवल मात्र कल्पना में रहने वाला निराधार ईश्वर? कोई भी व्यक्ति, जिसका मस्तिष्क विकृत न हो प्रकृति को ही सत्य कहेगा। प्रकृति को असत्य और काल्पनिक ईश्वर को सत्य कहने वाला निःसन्देह पागल है। आँखों का अविश्वास करके कानों का विश्वास करना बुद्धिमानों का काम नहीं है। मनुष्य जाति का सारा इतिहास—चाहे किसी भी विषय का क्यों न हो-द्रव्य से ही सम्बन्ध रखने वाला मिलता है; सबका प्रकृति से ही सम्बन्ध है। गपोड़ कथाओं की बात दूसरी है। प्राणों के उद्गम और विकास का आधार तथा जीवत्व के सर्वश्रेष्ठ प्रकट प्रकाश का मूल प्रकृति है।

वस्तु के विकास में, प्राणियों की उन्नति में, हम देखते हैं कि पिछला रूप मिट जाता है और अभिनव विकसित उन्नत रूप उसका स्थानापन्न हो जाता है। मनुष्यता में (सज्ञान पशुपन में) केवल पशुता के बल का दिन-दिन ह्रास होता जाता है और ज्ञान का विकास, यह क्रिया नैसर्गिक है। इसी ज्ञान-वृद्धि के कारण प्रकृति के गुप्त रहस्य मनुष्य को मालूम होते जाते हैं। इस विकास-काल में, विज्ञान के प्रचण्ड मार्तण्ड के प्रकाश में सिवा विक्षिप्तों के और कौन ऐसा हो सकता है, जो अन्धकार के समय के कल्पित ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करेगा? किसी फारसी कवि ने क्या ही खूब कहा है :

ख़्याले हरदो आलमरा ज़ लौहे दिल चुनां शुस्तम।
कि शुदवर तख़्तये हस्ती ज़ इक नुकता दोख़्त पैदा।।

जन्म के पूर्व और मृत्यु के बाद के संसार को दिल से ऐसा हटाया कि वर्तमान काल में प्राकृत जीवन के आधार पर एक प्रत्यक्ष विचार के कारण एक बिन्दु से दो

रेखाएँ उत्पन्न हो गईं। आदमहौवा के जंगलीपन का जमाना गया; खुदा की शरारत और शैतान की मेहरबानी की अब जरूरत नहीं। यह बीसवीं सदी का विज्ञान-काल है।

अब हममें सत्यासत्य के विवेक की बुद्धि बढ़ गई है और मिथ्या बातों को मार भगाने की इच्छा तथा शक्ति उत्पन्न हो गई है। आजकल का पण्डित कहता है : 'गुस्ताख़िये फरिश्ता नहीं मुआफ हमारे जनाब में।' आज हमें अवतारों, खुदा और रसूलों की जरूरत नहीं रही और न हम शून्य से संसार की उत्पत्ति मानने की मूर्खता करने को तैयार हैं। स्वार्थवश मनुष्यों को गुलामी के गर्त में रखने वाले असुरों की सारी कैफियत हमें मालूम हो चुकी है। हम सुरों के राजा ईश्वर की उस्तादियों और करामातों को खूब जान चुके हैं। हम समझ चुके कि हमारा कल्याण अगर हो सकता है तो असुरों के द्वारा।

सुर बनने वाले धर्मयाजकों, राजवर्गियों और धनवानों का विचार मेरे दिल में आ गया, इसलिए आवेश में आकर मैंने विषय से कुछ असंगत बातें कह डालीं। लेकिन यह जरूर है कि यदि सुर आजकल के उच्च, सर्वश्रेष्ठ बनने वाले हिन्दुओं की तरह होते हैं, और असुर गरीब, मेहनत की कमाई खाने वाले, छोटे कहलाने वाले किसान, मेहतर, धोबी, चमार, लोहार, बढ़ई हैं, तो मैं असुरों को अवश्य ही सुरों की अपेक्षा बड़प्पन दूँगा। ईश्वर यदि ऐसा ही है जैसा बाइबिल और कुरान का ईश्वर तो इन्हीं पुस्तकों के शैतान की उपासना को मैं लाख बार अच्छी समझूँगा।

हम देखते हैं, संसार का विकास क्रमशः नीचे से ऊपर को हुआ है। मानव जगत् दिन पर दिन ज्ञान की वृद्धि करता जा रहा है। जो विज्ञान, जो कला-कौशल 15वीं शताब्दी तक न थे, आज क्रमशः उन्नत होकर बीसवीं शताब्दी में हमारी आँखों के सामने हाजिर हैं। लेकिन ईश्वरवादी अपनी आँखें बन्द करके उलटा मार्ग लेते हैं। यह सर्वगुण-ज्ञान गरिमा सम्पन्न एक ईश्वर को तो पहले ही मान लेते हैं और फिर उससे अज्ञान-तिमिराच्छादित जगत् की उत्पत्ति मानते हैं। यह कैसी विचित्र बात है। ईश्वर भी कोई व्यक्ति होगा या होगी तो उसका उन गुणों से विभूषित होना जिनसे उन्हें विशिष्ट किया जाता है, सर्वथा सम्भव है। इस प्रत्यक्ष बात को जानने के लिए किसी चालबाजी की जरूरत नहीं। इसके लिए व्यक्त परमात्मा के मानने वालों को कुछ कहने की जरूरत नहीं।

कुछ लोग कहते हैं, ईश्वर एक सर्वव्यापक आत्मा है, जो आकाशवत् या सूर्य के प्रकाशवत् सर्वत्र व्याप्त है, वही संसार का निर्माता, संचालक और प्रबन्धक है। किन्तु यह बात भी नहीं बनती; क्योंकि जिस ईश्वर को ज्ञान का भण्डार, शील का खजाना, पाण्डित्य का सागर, दयालुता और न्याय की खत्ती और सारे गुणों का 'आर्टिजन वेल' (पातालतोड़ कूप) माना जाता है, उसकी कार्यवाही में तो यह सब बातें हम नहीं देखते।

जिसे लोक-दिक्-काल के परे खोजने जाकर बड़े-बड़े दार्शनिकों ने जमीन और आसमान के कुलावे मिलाये हैं, उसकी सत्ता को गौतम, कणाद, कपिल, वाचस्पति मिश्र, शंकर आदि भारतीय और प्लेटो, डिकार्ट, स्पायनोजा, काण्ट और हीगल आदि योरोपीय दर्शनकार भी न तो सिद्ध कर पाये, और न उसकी सन्तोषजनक व्याख्या ही कर सके। अन्त में बड़े-बड़े ऋषियों, अवतारों, नबियों, वलियों ने भी विश्वस्त खोज न की। जिस पहेली के बूझने में अपनी बलहीनता, बुद्धि-विहीनता को ही स्वीकार करके वेद शास्त्र केवल 'नेति-नेति' कहकर रह गये, उसे कोई कैसे मान सकता है। सच तो यह है कि असत् को सत् सिद्ध करना सम्भव नहीं। आँखें बन्द करके बेहूदा बातों पर विश्वास कर लेना दूसरी बात है। परन्तु प्राकृत नियमों के विरुद्ध कोई हस्ती नहीं हो सकती, न इसके विरुद्ध कोई शक्ति। इससे भिन्न कोई वैज्ञानिक केवल कल्पना ही कर सकता है। वनस्पति से प्राणी, प्राणी से मनुष्य, इसी प्रकार उत्तरोत्तर एक प्राकृतिक नियम के अनुसार संसार का विकास हुआ। तब यह अनहोना ईश्वर कहाँ से कूद पड़ेगा, जो प्रकृति से भिन्न और आरम्भ में ही सब गुणों की खान भी। आँखें बन्द करके किसी बात की कल्पना कर लेना दूसरी बात है। विश्वास में यही तो एक दोष है कि इसकी आँखें नहीं होतीं। यह चिड़िया के दूध की कल्पना करता है और उसका अस्तित्व मानकर बैठ जाता है। इसी अन्धविश्वास से उत्पन्न हुआ ईश्वर समस्त संसार के धर्मग्रन्थों, दर्शनों और चालबाजों की पुस्तकों का प्रधान चरित्र नायक है, जिससे संसार की सारी बुराइयाँ, बदमाशियाँ, अत्याचार तथा कमजोरियाँ पैदा हुईं और मनुष्य जाति नीच और निकम्मी हो गई।

जहाँ शारीरिक हानि पहुँचाने के लिए अनेक नशेबाजी और दुराचार के अड्डे होते हैं, वहाँ मनुष्य को मानसिक हानि पहुँचाने और निकम्मा बनाने के लिए धार्मिक अड्डे-गिरजे, मन्दिर और मस्जिदें भी हैं। यह सब काम काबू याफ्ता शासन और शासक मण्डल के हित के लिए उनके दलालों अर्थात् पुरोहितों द्वारा, सरकार की छत्रछाया में बसने वाले गरीबों को लूटने वाले अमीरों की मदद से हुआ करते हैं। मूर्ख ग्रामीणों के दिमाग में जहाँ एक बार कोई बेवकूफी घर कर गई, फिर मुश्किल से निकलती है। इन बेचारों में ज्ञान नहीं, विवेक नहीं, समझ नहीं, विद्या नहीं, खाने को अन्न और पहनने को वस्त्र तक इनके पास नहीं। जो चाहे इन्हें पण्डित, मौलवी, पादरी बनकर ठग सकता है, धोखे में डाल सकता है और अपनी अर्थ-सिद्धि का साधन बना सकता है। पीढ़ियों से इन बेचारों का यही हाल है। सिखाने वाले धनिक, पुरोहित और राजकर्मचारियों में से कोई भी ईश्वर को नहीं मानता, पर हरेक ईश्वर को मानने का ढोंग रचता है। मैं पूछता हूँ कौन पण्डित, मौलवी, पादरी, राजा-रईस और सेठ साहूकार ऐसा है जो झूठ नहीं बोलता, फरेब नहीं करता और तमाम दुनिया की बदमाशियों से

पाक है, इस हालत में कोई चतुर मनुष्य यह कैसे मान सकता है कि लोग ईश्वर की हस्ती के कायल हैं, परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करते हैं। इसलिए ईश्वर कोई चीज नहीं है, सिवा इसके कि गरीबों को ठगने के लिए ठगी का एक जाल है। यह जाल जितनी जल्दी तोड़ दिया जाये उतना ही अच्छा। जूसेप मटजीनी* और टामस पेन के सदृश मनुष्य-भक्तों ने भी इस कल्पना में पड़ कर ठोकरें खाईं तो दूसरों की क्या गिनती।

लेकिन दुःख तो इस बात का है कि इन देश और मनुष्य भक्तों ने भी कोई ऐसा तर्क और युक्ति-युक्त प्रमाण न दिया कि ईश्वर का अस्तित्व निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता। प्रोफेसर फ्लिण्ट ने अपनी 'एण्टी थिइस्टिक थियरीज' नाम की पुस्तक में नए पुराने सभी अनीश्वरवादियों के तर्कों का उत्तर देने का बहाना किया है, लेकिन ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध नहीं कर सके। मुझे दुःख है कि न तो इस छोटे से लेख में 'पेन' और 'फ्लिण्ट' के लेखों को उद्धृत करके उत्तर देने को स्थान और समय है और न इस समय मेरे पास पुस्तकें प्रस्तुत हैं। जिन महानुभावों को देखना हो 'पेन' कृत 'एज आव रीज़न' और फ्लिण्ट कृत 'थिइज़्म' और 'एण्टी थिइस्टिक थियरीज' को पढ़कर देख लें। इनमें अगर ईश्वर के अस्तित्व का कोई प्रमाण मिले तो कृपया मुझे सूचना दें। इतना खयाल रखें कि जिन बातों का मैं अपने अनेक लेखों में खण्डन कर चुका हूँ, उन्हीं का पिष्टपेषण न हो। मैं हर दशा में अपने विपक्षियों के तर्कों का उत्तर देने को तैयार हूँ, अलबत्ता गालियों के उत्तर देने में मैं असमर्थ हूँ। जो ईश्वर की सत्ता सिद्ध करने के बदले मेरे छिद्रान्वेषण करने में अपनी जीत समझते हैं, उनसे मैं पहले ही अपनी हार स्वीकार करता हूँ।

टामस पेन ने ज्योतिषशास्त्र का बड़ी निपुणता के साथ वर्णन करने के पश्चात् यह कह दिया कि यह सब ईश्वरीय चातुर्य का ही फल है, कोई तर्क नहीं है। जो भद्र पुरुष ईश्वरीय पुस्तकों का अपौरुषेय ग्रन्थ होना अस्वीकार करता हो और उनके खण्डन में तर्क और इतिहास से काम लेता हो वही एक कल्पना मात्र के आधार पर अपनी प्रतिज्ञा की सिद्धि मान ले, यह कितने बड़े आश्चर्य की बात है। इसी तरह महात्मा मटजीनी ने भी, अपने समय के एक अद्वितीय दार्शनिक होते हुए, ईश्वर को सिद्ध करने में जो तर्क सामने रखा है, वह बहुत हास्यास्पद है। आप कहते हैं : सार्वभौम और आदिम विचार, जिनका ग्रहण करना सदा शाश्वत समझा जाता है, सारे संसार के भाव और विश्वास मिथ्या एवं भ्रममूलक नहीं हो सकते। यह तर्क अनेक प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों ने मेरे सामने पेश किया, लेकिन जो इसी का नाम तर्क और लॉजिक है तो मैं कहूँगा कि संसार में

---

* मैजिनी—सं.

तर्कशास्त्र का होना ही व्यर्थ है।

'बेकुनिन' (रूसी विद्वान्—प्राउढन* का समकालीन) ने ठीक कहा है कि जो तर्क की यही दशा है कि जो बात भूत और वर्तमान के सब लोगों ने ठीक मान ली है और मानते हैं, उसे तुम भी मान लो और कह दो कि खुदा है और जो तुम नहीं मानते—'किमु, कस्मात् कारणात्' से काम लेते हो—ईश्वर के अस्तित्व में सन्देह करते हो-तो तुम्हारा तर्क गया भाड़ में, तुम प्रत्यक्ष राक्षस हो। तब तो हमें भी मूर्खों की तरह बुद्धि को विदाई देकर ठकुरसुहाती करनी पड़ेगी। लेकिन कोई जवाँ मर्द अपनी बुद्धि के विरुद्ध किसी के भय से भद्दी बात को ठीक नहीं मान सकता। हाँ, हम यह जरूर मान लेंगे कि जो बातें अनन्त काल से सबने मान रखी हैं उनमें अनेक तर्क और विज्ञान-विरुद्ध कल्पनाएँ हैं। ऐसी कल्पनाओं की जाँच-पड़ताल करना प्रत्येक नवयुवक का धर्म है। अन्धों के अनुगतों का कल्याण इस संसार में असम्भव है।

बहुत काल तक संसार पृथ्वी को चपटी मानता रहा तो क्या हम उसे आज भी चपटी ही मान लेंगे? इसी तरह की हजारों बातें हैं, जिन्हें संसार अनादि काल से एक तरह पर मानता चला आता था, विज्ञान ने उन्हें झूठा सिद्ध कर दिया और सच्चाई सामने रख दी तब हमें सत्य को मानना ही पड़ा।

लोग पहले पानी को एक तत्त्व समझते थे पर आज यह मानने को तैयार नहीं, क्योंकि हम जान गये हैं कि आक्सीजन और हाइड्रोजन नाम के दो वायव्य पदार्थों के योग से जल बना है। यदि हम आज समझ गये कि खुदा नाम का कोई पदार्थ न तो है और न हो सकता है तो हमारा काम है कि हम इस शब्द को अपने कोषों में से निकाल डालें और धर्म की बेहूदगी से अपना पल्ला पाक करें। संसार में बेहूदगी, अन्याय, अत्याचार से ज्यादा पुरानी चीजें और कोई भी नहीं। पहले लोग स्त्रियों को उनके पिता से छीन कर ले जाते थे। इस रीति का प्रमाण आज भी ब्याहों में पाया जाता है, लेकिन क्या आज भी कोई इस बात को पसन्द करेगा? फिर ईश्वर को फिजूल पकड़कर बैठना कहाँ की बुद्धिमत्ता है।

'बहुतेरे लोग कहते हैं प्रकृति और पुरुष भिन्न नहीं, एक ही हैं। जैसे द्रव्य में शक्ति, मेंहदी के पत्ते में सुर्खी। इसलिए ईश्वर है और सर्वव्यापी है।' हजरात, बिना गुलाब के गुलाबी रंगत कहाँ? जो यह कहें कि गुलाब भी है और गुलाबीपन भी, इसी तरह ईश्वर भी है और प्रकृति भी; प्रकृति में जो शक्ति है वही ईश्वर है तो मैं कहूँगा कि ईश्वर द्रव्यगत शक्ति का नाम है, वह कोई पृथक पूज्य पदार्थ नहीं, न वह न्यायशील और ज्ञान का इतना न्यारा गहरा गढ़ा है, जिसे हम नाप न सकें। ईश्वर यदि

---

*प्रूधों—सं.

केवल गति, शक्ति, फोर्स का एक पर्याय मात्र है तो रहने दो। इसके लिए लम्बी-लम्बी नमाजों और बड़ी-बड़ी उपासनाओं की क्या जरूरत है? बड़े-बड़े पोथों के पाठ, मंत्रों के जप, तिलक-माला और गद्य-कथाओं से क्या लाभ? विज्ञान पढ़ो, द्रव्यगत ईश्वर की उपासना से नये-नये आविष्कारों में लग जाओ। बड़े-बड़े आविष्कर्त्ताओं को ही अवतार, नबी और वली समझो, उन्हीं की खोज की पुस्तकों को धर्म पुस्तक मानो, संसार को अकारण धोखा देने से क्या लाभ?

(3)

अब हम जरा अल्लाह मियाँ की पैदाइश की तरफ ध्यान देना चाहते हैं। क्योंकि अजन्मा, निर्विकार आदि नामों से लोग उसे पुकारा करते हैं? जब मेरा मूल मन्तव्य यही है कि ईश्वर को हमेशा के लिए जनता के हृदय-पटल से उड़ा दिया जाये तो जैसे कुश की जड़ खोदकर मट्ठा डाला जाता है, उसी तरह ईश्वर की भी जड़ खोदकर उसमें कैरोसिन तेल डालना पड़ेगा। इसलिए ईश्वर की जड़ तलाश करके उसका नाश करना मेरे लिये अत्यन्त आवश्यक काम हो गया। यदि हमने तर्क से लोगों के ऊपरी साधारण विचारों को पलट भी दिया तो क्या फिर लोग दूसरे नाम और रूप से एक नई कल्पना खड़ी न कर लेंगे? जैसे मूर्त्ति-पूजन छोड़ने पर भी मुसलमान संग असबद को बोसा देने लगे, मुहम्मद साहब की कब्र की जियारत और काबे की मस्जिद को सिजदा करने पर उतर मड़े, कुछ लोग ताजिये बनाने लगे, कितने हर किसी क़ब्र पर फूल-चद्दर चढ़ाना, फातेहा पढ़ना सीख गये, यही हाल हिन्दुओं, ईसाइओं और जैनों का भी है। इसलिए जड़ से ही खुदा परस्ती की कला कमा हो, तभी कुछ काम हो सकता है। अस्तु, हम ईश्वर की पैदाइश की खोज करके अपने ज्ञानवान्, विचारशील, धीर-वीर पाठकों को बतलातें हैं। हमारे परिश्रम से ईश्वर का नामोनिशान ऐसा मिटे कि उसका कोई नाम लेने और पानी देने वाला बाकी न रहे, तो समझिये कि मेहनत सफल हुई। अगर जरा भी चिन्ह बाकी रहा, वट-वृक्ष की तरह फिर ईश्वर नये अंकुर फोड़ने लगा, तो संसार के सामने एक नई जहमत दिखाई देगी। आओ भाई अतिक्रान्ति से प्रेम करो—अपने बुद्धिदाता शैतान को सिंहासनारूढ़ करने के लिए अपने शत्रु खुदा को गद्दी से उतारो। इसी में हमारा-तुम्हारा, सबका कल्याण है। जब से ग्रेट ब्रिटेन ने खुदा को हटाकर शैतान को सिंहासनारूढ़ किया, तभी से उसका सारे संसार में बोलबाला है। अब बाकी योरोप में खुदा इधर-उधर छिपकर दिन काट रहा है, मगर अभागे एशिया देश में उसकी डकैती बराबर जारी है। इसलिए एशिया के प्रधान ज्ञान-क्षेत्र भारत से ईश्वर को सबसे पहले देशनिकाला देना हम भारतवासियों का प्रधान कर्त्तव्य है। अगर हम सब नौजवान कमर कस लें, तो महात्मा गाँधी सदृश दस-पाँच आदमियों की मदद

से वह कभी स्थिर नहीं रह सकता है। आओ, इसकी जड़ का पता लगावें।

धर्म के भ्रम और ईश्वर की मिथ्या कल्पना के कुछ लोग वाल्टेयर की तरह समर्थक हैं, यह प्रजा में भय उत्पन्न करने की जरूरत बतलाते हैं। यदि जरूरत के कारण ही ईश्वर और धर्म को माना जाये तो वह चिड़ियों को डराने वाले खेत में खड़े काठ के पुतले के सिवा और कुछ नहीं रह जाता। जिस तरह प्राचीन एवं सार्वभौम कल्पना के आधार पर ईश्वर या धर्म का मानना विज्ञान और तर्क-शास्त्र के प्रतिकूल है, वैसा ही मूर्खों को डराने के लिए भी यह कल्पना बुरी और अमान्य है। जिनकी अन्तरात्माएँ दृढ़ हैं, जो सत्य के अनन्य भक्त हैं, जो मनुष्य के ज्ञान और उसके तर्क को प्रतिष्ठा देते हैं, वे इस प्रकार की कल्पना करंने में सर्वथा असमर्थ रहे हैं, और रहेंगे।

मनुष्य जो धार्मिक विश्वास और ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किये बैठा है, उसका कारण बेसमझी और अविचार इतना नहीं है, जितना दुःख और हार्दिक असन्तोष। गरीब, फिर बेपढ़े लोगों का जीवन इतना बुरा है, उनको खाने-पहिनने आदि की इतनी तकलीफ है कि जब वे कुड़कुड़ाते और जलते हैं तो सारा दोष किसी ऐसी शक्ति के मत्थे मड़ देते हैं, जो उनसे भिन्न है। यदि वे ईश्वर के बदले अपने कष्टों का दायित्व जबरदस्त, सताने वाले और अधिकार प्राप्त लोगों पर डालें तथा सामाजिक अतिक्रान्ति के लिए तैयार हों तो ज्यादा अच्छा हो; इनका दुःख दूर हो जाये। ईश्वर को मान लेने से दुःखों से छुटकारा मिलता नहीं दीखता। यदि मिलता तो पत्थर को रोटी मान लेने से भी काम चल जाता। सारांश यह कि ईश्वर का जन्म मूर्खता से हुआ और भय, छल तथा सन्तोष ने इसकी यथा अवसर पुष्टि की।

सृष्टि की प्रारम्भिक अवस्था में मनुष्य का ज्ञान इतना समृद्धिशाली नहीं था, जैसा अब है। उनकी योग्यता कम थी; उनके मनोवेग और ज्ञान यथार्थ काम न दे सकते थे जैसे बालक का हाल है। इसलिए उसने देवी, देव, नबी, रसूल, अवतार—जो भी किसी को सूझा, मान लिया। यह सब मनुष्य की ही कल्पना है, इसमें वास्तविकता कुछ नहीं है। इसका प्रमाण यह है कि मनुष्य ने जो कल्पना की, अपने ही रूप के अनुरूप की। राजदरबार, जबरदस्तों की तलवार, धनवानों का सुखमय आगार देखकर हमने भी ईश्वर के दूत, जेल के बदले नरक, भोग-विलास के स्थान में स्वर्ग आदि की कल्पना कर ली। पुराण, बाइबिल, कुरान की गाथाओं को देखकर इस कल्पना की निःसारता सहज ही समझ में आ जाती है।

जिस तरह बच्चे अपनी मातामही, पितामही से झूठी लम्बी-चौड़ी कथाएँ सुनकर कल्पना किया करते हैं, मनुष्यों ने भी अपने स्वार्थी भाइयों से, जो कुछ अधिक चतुर थे, कथाएँ सुनीं और धर्म के नाम से, भोलेपन के कारण, सत्य मान बैठे। इस गप्प को लोग न मानते तो पोप, खलीफा, गोस्वामी पण्डित-पण्डे, पुजारी प्रभृति लोग जनता

के धन से मोटे बनकर न बैठ सकते। एक बार कल्पित ईश्वर को गद्दी पर बिठाकर जैसे मन्दिर में मूर्त्ति स्थापित करके लोग संसार को ठगने लगते हैं, उसी तरह विद्वानों और बात बनाने वाले लोगों ने यह कह कर ठगना आरम्भ किया कि 'वह बड़ा दयालु, न्यायकारी, सारे जगत् का नियन्ता, विनाशक और बनाने वाला है', इत्यादि। इस तरह कल्पित ईश्वर की वेदी पर भोले-भाले लोगों का बलिदान प्रारम्भ हो गया, और हो रहा है।

ईश्वर को स्वामी और मनुष्य को दास मानने से ही संसार में गुलाम और स्वामी की सृष्टि हुई। इस विश्वास को लोगों ने अवतार और नबी आदि बनकर फैलाया, और पुजे। जबतक ईश्वर सबका स्वामी है, मनुष्य दास है। जहाँ ईश्वर का स्वामित्व मिटा कि मनुष्य की दासता का भी अन्त हुआ समझो। इसलिए ईश्वर को मिटाना, मनुष्य की दासता को हटाना तथा मनुष्यों में समता और न्याय का प्रचार करना है। ईश्वर को मानना बुद्धि और न्याय को एकदम जलांजलि देना है—मनुष्य की प्राकृत स्वतंत्रता का निश्चय नष्ट करना है। इसलिए यदि हम मनुष्य जाति का कल्याण चाहते हैं, तो सबसे पहले हमें धर्म और ईश्वर को गद्दी से उतारना चाहिए। आँखों से दिखलाई देने वाले और बुद्धि-ग्राह्य जगत् को मिथ्या मानकर एक निर्मूल पदार्थ को सर्वश्रेष्ठ मान बैठने से बड़ी और क्या नादानी हो सकती है?

धर्म ने मनुष्य को कितना नीचे गिराया, कितना कुकर्मी बनाया, इसको हम स्वयं सोचकर देखें। ईश्वर का मानना सबसे पहले बुद्धि को सलाम करना है। जैसे शराबी पहला प्याला पीने के समय बुद्धि की विदाई का सलाम करते हैं, वैसे ही खुदा को मानने वाले भी बुद्धि से विदा हो लेते हैं। ईश्वर की कल्पना मनुष्य को निर्बल, निकम्मा, परमुखापेक्षी और गुलाम बना डालता है। धर्म ही हत्या की जड़ है। कितने ही पशु धर्म के नाम पर रक्त के प्यासे ईश्वर के लिए संसार में काटे जाते हैं, इसका पता लगाकर पाठक स्वयं देख लें।

कितने झगड़े ईश्वर और धर्म के नाम पर होते हैं। आज हिन्दू मुसलमानों के बीच, भारत में जो परिस्थिति है, उसकी जिम्मेदारी धर्म ही पर है। आज कुरान को हटा दिया जाये, तो आज ही भारत में सुख शान्ति आ सकती है। हिन्दुओं में भी वही दोष है, जो मुसलमानों में; किन्तु बहुत कम दर्जे में। दोनों में राई और पर्वत का अन्तर है। फिर भी दोनों ही गलती पर हैं। जितने पादरी, मौलवी, पण्डित, पुजारी और पण्डे धर्म का दम भरते हैं, ऊपर से बड़े भद्र होते हैं; पर इनके दिल बहुत काले होते हैं। इनकी आकांक्षा रहती है कि ईश्वर और धर्म के नाम पर हम ठगें, लोग ठगें जायें, और हमारे पीछे पागल की तरह फिरें।

आज हमारे देश के बड़े-बड़े विद्वान यदि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट को निकाल देने के

पहले ईश्वर को निकाल देते, धर्म की फाँसी अपने गले से निकाल फेंकते, तो उनमें कभी का इतना बल आ जाता कि अपने देश का शासन आप करते। ज्यों-ज्यों दुनिया में बुद्धि का विकास होता जाता है, त्यों-त्यों ईश्वर की थोथी कल्पना मिटती जाती है। समय आवेगा कि धर्म की बेहूदगी से संसार छुटकारा पाकर सुखी होगा, और आपस की कलह मिट जायेगी। खुदा है क्या वस्तु? कोई वस्तु? कोई व्यक्ति? कोई मनोगत भाव? कुछ नहीं—एकमात्र निर्मूल कल्पना, एक कुविचार जनित शब्द। मनुष्य से अधिक सुन्दर, चतुर, शक्तिशाली, ज्ञानवान्, भद्र परोपकारी, न्याय और दया को समझने वाला, न तो कुछ है, न हो सकता है। लेकिन जब कुछ मनुष्य दूसरों को सताने वाले देखे जाते हैं, तो लोग एक सर्वश्रेष्ठ की कल्पना करते हैं। यह नहीं समझते कि मनुष्यों में भी भले और बुरे दोनों की पराकाष्ठा के नमूने हैं। इसी को देखकर ईश्वर में क्रोध, बदला, नाशकारी-शक्ति का आरोप किया गया है। मनुष्य का ही मनन करो, प्रकृति का पाठ पढ़ो, इसी में हमारा कल्याण है। एक अत्याचारी, एक मूर्ख शासक, खुद-मुख़्तार और रद्दी ईश्वर की कल्पना करना मानो स्वतंत्रता, न्याय और मानव धर्म को तिरस्कार करके दूर फेंक देना है। यदि आप चाहें कि ईश्वर आपका भला करें, तो उसका नाम एकदम भुला दें। फिर संसार मंगलमय हो जायेगा।

मनुष्य के सरल, साधारण नैसर्गिक ज्ञान के हथौड़े से ही ईश्वर की कल्पना को टुकड़े-टुकड़े कर सकते हैं, लेकिन देखा जाता है कि आध्यात्मिकता के नये-नये जाल, मनुष्य जाति के गले की फाँसी को सुदृढ़ करने के लिए गढ़े जा रहे हैं। साधारण जनसमूह का कल्याण और हमारी मानसिक भलाई इसी में है कि हम ईश्वर की ऐतिहासिक उत्पत्ति को मनोयोग के साथ समझें; वे कौन से लगातार ऐसे कारण हुए, जिनसे मनुष्य ने अपने मन में ईश्वर की कल्पना की, इसका विचार करें। यदि हमलोग पढ़े-लिखे, विचारशील व्यक्ति अच्छी तरह ध्यान देंगे तो निःसन्देह हम थोड़ा-बहुत उस सार्वभौम अन्तरात्मा की पुकार से, जिसका भेद हमने अच्छी तरह प्रकट नहीं किया, दब ही जाएंगे। कड़े से कड़े दिल के आदमी में एक स्वाभाविक निर्बलता देखी जाती है। वह यह कि सामाजिक बन्धन के दबाव में मनुष्य आ ही जाता है और किसी न किसी प्रकार उसे धार्मिक बेहूदगी के गढ़े में गिरना पड़ता है। टामस पेन सदृश विद्वान ने भी ऐसी ही ठोकर खाई है। धर्म की पकड़ साधारण जनसमूह या समुदाय में इतनी बलवती क्यों देखी जाती है? इसका यह अर्थ नहीं है कि यह सब पागल हैं। लेकिन इस अबूझ पहेली में फँसने का कारण उनकी मानसिक चिन्ता और हार्दिक असन्तोष है। इस असन्तोष का निराकरण ईश्वर की कल्पना से नहीं हो सका तो अब सामाजिक अतिक्रान्ति ही इसका अन्त करेगी। इसलिए अतिक्रान्ति की बड़ी ही आवश्यकता है। जर्मनी में राजसत्तापोषक (Imperialist) ने एक बार कहा था—We do not only

need the soldiers' legs but also their brains and their hearts.

अर्थात्—हमें सिपाहियों के केवल हाथ-पैरों की ही जरूरत नहीं है, हमें उनके दिल और दिमाग को भी गुलाम बना लेने की जरूरत है। मतलब यह कि गरीबों के दिल और दिमाग—उनकी मानसिक वृत्ति और हृदय, ऐसे बनाये जायें कि वह खुशी से पशुओं की तरह धनिकों, अधिकार प्राप्तों की गुलामी यावज्जीवन करते रहें। यही तो मनु ने भी किया, जो उसने शूद्रों के कर्त्तव्य में यह लिखा कि 'एकमेव तु शूद्राणां प्रभु कर्म समादिशत्ः एतेषां त्रय वर्णानां शुश्रुषामनुसूयया।' यह तो गरीबों को लूटने का एक साधन है कि उन्हें धर्म-याजकों द्वारा ईश्वर या धर्म का भय दिलाया जाता रहे। क्या कोई पण्डित, मौलवी, पादरी या दूसरा धर्म-याजक या राजा-रईस और धनिक ईश्वर को मानता है? उससे डरता है? कभी नहीं। क्योंकि वह जानते हैं कि ईश्वर मात्र हमारे स्वार्थ सिद्धि का एक खास बहाना है। स्कूल, देवालय, राजसत्ता और छापेखाने सभी कुछ गरीबों को अन्धकार में डालने के लिए धनवान और जबरदस्त लोगों ने मिलकर बनाये हैं। स्कूल भी शुद्धि बुद्धि से जनता के हित के लिए नहीं बनते। देवालय और ईश्वर तो प्रत्यक्ष ठगी के जाल ही हैं। एक स्थान पर पण्डित शिरोमणि बुहारिन ने स्पष्ट बतलाया है कि गरीबों के छलने के लिए धर्म (Church) के द्वारा क्या-क्या शरारतें की जाती हैं। हम यहाँ विपयान्तर होने के भय से इस पण्डित की विवेचना को स्थान नहीं दे सकते, अन्य पुस्तक में हम शीघ्र इस प्रकार के विषयों पर अलग विचार करने की इच्छा रखते हैं, यदि समय और शरीर साथ दें। ईश्वर का भ्रम मनुष्यों में कैसे उत्पन्न किया गया, इसी पर अब मैं थोड़ा सा और विचार करके इस लेख को समाप्त करना चाहता हूँ।

वेद, पुरान, कुरान, इंजील आदि सभी धर्म पुस्तकों को देखने से प्रकट है कि सारी गाथाएँ वैसी ही कहानियाँ हैं, जैसी कुपढ़ बूढ़ी, दादी, नानी अपने बच्चों को सुनाया करती हैं। गीदड़, चिड़िया और राक्षस की जो कहानियाँ मैंने अपनी दादी से सुनीं थीं, मुझे आजतक याद हैं। धर्म-ग्रन्थों की बातें कहीं-कहीं इससे बेहूदगी में बहुत आगे बढ़ जाती हैं। इसका कारण मानव बुद्धि का अपूर्ण विकास, बालकाल का मूढ़ विश्वास ही हो सकता है, न कि और कुछ। ईश्वर, देवता, नबी, वली वग़ैरह-वग़ैरह की बुद्धि-विरुद्ध कल्पनाएँ मूर्खों के ही सर में पैदा हो सकती हैं और उन्हीं के भाई-बन्द उनको सुनकर उन पर विश्वास कर सकते हैं। बिना देखे-सुने, बिना जाने-पहचाने अनहोने लापता ईश्वर या खुदा के नाम पर अपने देश को, जाति को, व्यक्तित्व को और धन-सम्पत्ति को नष्ट कर डालना एक ऐसी बड़ी मूर्खता है, जिसकी उपमा नहीं मिल सकती। हमारे देश में करोड़ों हरामखोर इसी बेहूदा कल्पना की बदौलत मजे उड़ाते हैं और रात-दिन श्रम करने वालों को एक टुकड़ा रोटी भी यथासमय नहीं मिलती।

वह बुद्धि-विहीन मस्तक कैसा विचित्र होगा जिसमें 'कुछ नहीं' को सत्य, न्याय, सौन्दर्य, बल, धन, जन से सम्पन्न और मनुष्य को नीच, हेय, पतित, निर्बल, निकम्मा, पापी माना तथा मनवाया होगा। आओ आज हम इस बेहूदगी का पर्दा फाड़कर संसार को सुखी बनाने के लिए उसके गले से गुलामी का तौक उतारने के लिए, घोषणा करें कि 'ईश्वर नाम का कोई पदार्थ नहीं है—मनुष्य-बुद्धि की विडम्बना मात्र है।' जब तक यह कल्पित स्वामी ईश्वर हमारे सर पर रहेगा, हमारी गुलामी का अन्त न होगा। ईश्वर गया और गुलामी भी गई। ईश्वर ही सब पापों की जड़ है; सब फसादों का आदि है; इस नाम को भूल जाने में ही हमारा कल्याण है। प्रह्लाद के पिता के चातुर्य्य और प्रह्लाद की अदूरदर्शिता का पता, उन विचारशीलों को लगेगा, जो बात की तह में गहरे घुस कर देखेंगे। ख़ुदा यदि हमारे कल्याण का हेतु हो सकता है तो सिर्फ़ इसी तरह कि वह हमारे बीच से सदा के लिए अपना सा मुँह लेकर चला जाये। सच तो यह है कि संसार खुदा से तंग आ चुका है।

हमें दुख है कि आज भी हमारे देश के बड़े-बड़े विद्वान यथा महात्मा गाँधी, साधु टी. एल. वासवानी, डाक्टर संजीवी, दार्शनिक-अग्रगण्य श्रीयुक्त भगवनदासजी इत्यादि-इत्यादि उसी भूल को पद-पद पर दृढ़ करने में लगे हुए हैं, जिसे, हमें चाहिए था, संसार के सामने प्रकट करके सर्वदा के लिए उठा देते, अशुद्ध अक्षर की भाँति हरताल से छिपा देते।

हमारे कुछ दोस्तों ने प्रकृति की आन्तरिक अविच्छिन्न शक्ति को (Inherent force in matter) ही ईश्वर मानकर प्रार्थना की है कि ईश्वर को इस काम से अलग पड़ा रहने दीजिए, लेकिन मैं कहता हूँ कि इस प्राकृत-शक्ति के लिए प्रकृति काफी है। अधिक विचार के लिए आप चाहें तो दूसरा नाम रख सकते हैं, लेकिन मैं अपने वश पड़ते 'राजा और ईश्वर' शब्दों से संसार के किसी भी कोष को कलंकित नहीं देखना चाहता। ईश्वर ही की कल्पना राजा की कल्पना, गुरुओं और महन्तों की कल्पना का प्रधान कारण है। इसलिए संसार की बुराइयों पर कुठाराघात करने के निमित्त ईश्वर की जड़ को काटना सबसे पहले जरूरी जान पड़ता है। आशा है हमारे नवयुवक इस बात पर गहरी, गम्भीर और धीरता, वीरतापूर्ण दृष्टि डालकर शीघ्र ईश्वर को निकालने का प्रयत्न करेंगे।

(4)

संसार में जितने धर्म-ग्रन्थ हैं, सबमें श्रेष्ठ और सुपाठ्य प्रकृति है। इस ग्रन्थ के किसी-किसी सूत्र के व्याख्याकार भी हुए हैं। उन्हें भी हम चाहें तो सहायता लेने के विचार से पढ़ें। कितने ही गणितज्ञ, भूगोल-खगोल वेत्ता, नई-नई खोज और आविष्कारों

के कर्ता पण्डित हुए हैं। इन्हीं के निश्चित सार्वभौम निर्दोष प्राकृतिक नियमों के मानने से हमारी स्वाधीनता, स्वतंत्रता तथा मनुष्यता स्थिर रह सकती है। इसके विरुद्ध जितने नियम हैं, वे सब तिरस्कार के साथ ठुकरा देने योग्य हैं। इन प्राकृत नियमों को जहाँ हमने एक बार समझ कर मान लिया, फिर हमारा मार्ग सीधा, सरल और निष्कण्टक हो जायेगा। संसार में साधारण जनता से लेकर बड़े-बड़े पण्डित तक सभी इसके विरुद्ध मुँह खोलने में असमर्थ हैं। कौन-सा ऐसा धर्म-याजक, जगद्गुरु, महात्मा, पैगम्बर, अवतार, दर्शनकार इस संसार में है, जो गणितशास्त्र-सिद्ध सिद्धान्तों का विरोध करने का साहस करेगा। पागलखाने के बाहर मैं समझता हूँ, कोई बड़े से बड़ा धर्मान्ध भी ऐसा न मिलेगा, जो एक-एक दो होते हैं, इन बात से इनकार करे। आग जलती है, पानी जलती हुई आग को बुझा देता है, इसे कौन न मानेगा, जब तक कि कोई प्राकृतिक नियम इसके अन्दर दूसरी क्रिया न करता हो। साधारण जनता भी अपनी प्राकृतिक सहज बुद्धि से काम लेती है। वह नित्य प्रति निसर्ग के नियमों को देखती है और एक सीमा तक जानती तथा मानती है। यदि उसे बहके हुए पथ से हटाकर नैसर्गिक नियमों पर ही दृढ़ रखने का थोड़ा सा प्रयत्न किया जाये, तो निःसन्देह सत्य प्रकृति की उपासना अथवा असत्य ईश्वर के त्याग से बड़ा कल्याण हो। हमें उचित है कि हम विज्ञान की शरण लें और धर्म-ग्रन्थों को एक साथ नदी में बहाकर सदा के लिए निश्चिन्त हो बैठें। महात्मा कार्ल मार्क्स ने ठीक ही कहा कि 'Religion is opium of the people'—अर्थात् धर्म मनुष्य जाति की अफीम है। एक बार जिसे अफीम का चस्का लग गया, वह फिर इस घातक विष के फन्दे से निकल नहीं सकता। यदि कोई हजार में एक आध निकल जाये तो बड़ा ही चतुर, दूरदर्शी, बहादुर या साधारण परिभाषा में अत्यन्त भाग्यशाली है। किसी-किसी धर्म रूपी अफीम का नशा तो इतना गहरा और बेहोश करने वाला होता है कि लोग अपनी जन्मभूमि, अपने बाप-दादों के रज-वीर्य और अपने अस्तित्व को भी भूल जाते हैं। उदाहरण के लिए हम मुसलमान धर्म को ही लेते हैं। भारत को गुलाम, भूखे मरते, अर्द्ध जाति वाले मुसलमान अर्थात् नवमुसलिम अपनी पिनक में आकर कहने लगते हैं कि इस्लाम धरती की किसी सीमा से आबद्ध नहीं हैं। 'मुस्लिम हैं हम, वतन है, सारा जहाँ हमारा।'

हम इन मुसलमानों से पूछते हैं कि आप हिजरत कर गए थे, तब आपको मुस्लिम दुनिया ने यथेष्ट प्यार क्यों न किया, रहने को स्थान क्यों न दिया? आपका वतन सारा जहान था तो आप क्यों मुँहकी खाकर लौट आये? 1920 ई. में सारे हिन्दुस्तान के मुसलमान क्यों न अपने धर्म शास्त्र के अनुसार हिजरत कर गये? बात यह है कि फकीर टुकड़े को तरसता है, जिसके रहने के लिए एक कोठरी भी नहीं, वही मूर्ख सारी पृथ्वी को अपनी जागीर बताता है—

'आवारा वतन कहते हैं सारा जहाँ हमारा।'

हमारे मुसलमान धर्मावलम्बी भाइयों से इस पिनक ने माता के रज और पिता के वीर्य से भी इनकार करा दिया। काश्मीरी ब्राह्मण, खत्री और अन्यान्य हिन्दू अपने बाप-दादों को भूलकर खुरासानी खच्चर की तरह अपने बाप-दादों के बदले अरब के रज-वीर्य का दावेदार बनने लगता है। वह इतना पागल हो जाता है, उसे यह भी तमीज नहीं रहती कि धर्म दूसरी चीज है और नस्ल दूसरी; धर्म का खयाली पुलाव और बात है और अपनी प्यारी मातृभूमि दूसरी। धर्म के नशे में चूर नशेबाज जिधर देखो यही पुकारता फिरता है कि–

बररूय शश जेहत दरे आइनः बाज है।
यां इम्तियाज नाकिसो कामिल नहीं रहा।।

इसी बदबख्त मजहब के नशे के पागल अपनी उस धरती की महत्ता और पवित्रता को भूल जाते हैं, जिसमें उनकी अगणित पीढ़ियों की मिट्टी मिली हुई है और चोरों, उठाईगीरों, डकैतों की धरती को पवित्र मान बैठते हैं। इस तरह जिस धर्म के कारण मनुष्य मनुष्यता से गिर जाता है, उस धर्म, मजहब या रिलीजन से कब किसी मनुष्य का कल्याण सम्भव है?

इस धर्म के नशे में डालकर ही पूँजीपति शासन श्रमिकों को लूटता-खसोटता और पशुतुल्य दास बनाये रखता है। समस्त देशों के धर्म-याजक धर्मरूपी अफीम के प्रचार के ठेकेदार हैं। इन्हें इस नशे से गरीबों को उन्मत्त रखने के लिए धन मिलता है। धर्म की व्यवस्था हमेशा धन से खरीदी जाती रही है और अब भी खरीदी जाती है। डायर और ओ-डायर की क्रूरताओं का पादरियों ने और मालाबार के मोपलाओं के राक्षसी कृत्यों का मौलानाओं ने समर्थन किया। यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो सब पापों की जड़ धर्म है। इसलिए धर्म, मजहब और ईश्वर या अल्लाह को जितनी जल्दी भूमण्डल से विदा किया जाये उतना ही अच्छा।

याद रहे संसार में सामाजिक समुन्नति कभी किसी अप्राकृत शक्ति या शक्तियों से नहीं हुई, न हो सकती है और न कभी होगी। इसके सिवा विद्वानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि ईश्वर, धर्म और अनैसर्गिक शक्तियों का भाव मानव जाति में उसकी एक अनुन्नत दशा में पैदा होता है। यह इतिहास-सिद्ध बात है, फिर विकास होने पर एक ऐसी उन्नत दशा आ जाती है कि यह भाव परिवर्तित होते-होते विनष्ट हो जाता है। जैसे लड़कियाँ जवान होने पर गुड़ियों का खेल छोड़ देती हैं और फिर पसन्द नहीं करतीं; छोटे-छोटे बच्चे जवान होने पर अपने बचपन के बहुतेरे विचारों और बेहूदा खेलों को छोड़ देते हैं, वैसे ही मनुष्य जाति भी एक विशेष विकसित अवस्था के प्राप्त होने पर धर्म और ईश्वर के निर्मूल झगड़ों को त्याग देती है। मनुष्य और प्रकृति के संघर्ष

में किसी भी तीसरी बाह्य महाशक्ति का न अस्तित्व है, न 'कुछ नहीं' का कोई हस्तक्षेप हो सकता है। थोड़े से स्वार्थी लोग जनता को लूटकर अपना पेट और जेब भरने के लिए उसे धर्म के अँधेरे में डाल रखने का प्रयत्न किया करते हैं। इन असद्‌विचार वालों और लुटेरों से बचे रहना चतुर मनुष्यों का काम है।

हम कह चुके हैं कि केवल मूर्ख ही अनहोनी घटनाओं के घटने का विश्वास कर सकते हैं। जितने धर्म हैं सब गप्प कथाओं के आधार पर रचे गये हैं। यदि मिथ्यावादियों की होड़ा-होड़ी का आनन्द देखना हो तो हमें चाहिए हम धर्म पुस्तकों को पढ़ें और धर्म नामक छल से बचें।

सांसारिक कार्य करने के समय हम देखते हैं कि सभी नास्तिक होते हैं। क्या कोई मनुष्य रात दिन जो काम करता है उसमें प्रतिक्षण धर्म का विचार रखता है? रख ही नहीं सकता। यदि रखे तो संसार का कोई काम न चले। यही बड़ा भारी प्रमाण धर्म की अव्यावहारिकता और व्यर्थता को सिद्ध करने के लिए काफी है।

ला प्लेस नामक एक फ्रांसीसी विद्वान ने विश्वक्रम-ज्ञान (System of the universe) को प्रकट करने के लिए एक पुस्तक लिखी। यह पुस्तक प्रथम नेपोलियन बोनापार्ट ने पढ़ी और लेखक से कहा 'आपकी इस पुस्तक में कहीं भी ईश्वर का नाम नहीं मिला।' पण्डित ला प्लेस ने उत्तर दिया कि मुझे ऐसी कल्पना की कहीं भी आवश्यकता नहीं मालूम हूई। उसने अपनी पुस्तक में न तो कहीं दर्शनों से काम लिया, न किसी विश्व के रचयिता की कल्पना से, साथ ही उसने गणित का भी प्रयोग नहीं किया था। लेकिन बाद में गणितज्ञों ने इसके विचारों को गणित की कसौटी पर रखा तो सत्य ही सिद्ध हुआ। आजकल विज्ञान के जितने भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ देखे जाते हैं, कहीं भी उनमें ईश्वर की जरूरत नहीं दिखाई देती। बिना ईश्वर के माने ही सारी की सारी समस्याओं की मीमांसा हो जाती है। मानवीय ज्ञान में कहीं भी ईश्वर को स्थान नहीं मिलता। हमने जो कुछ ऊपर लिखा है, उससे प्रकट है कि मनुष्यों को स्वातंत्र्य, साम्य और बन्धुत्व विनष्ट करने में धनपात्रों, पूँजीपतियों, जबरदस्तों, राजकर्मचारियों आदि काबूयाफ्ता लोगों का जितना हाथ है, उतना ही धर्म का भी है। धर्म अत्याचारियों को सहायता देता है, गरीबों तथा दुखियों को और भी अधिकतर गरीब और दुखी बनाता है। किसी समय योरोप में धर्म के नाम पर ऐसे अत्याचार हुए हैं कि उन्हें देखकर शैतान, जिसे धर्म के माननें वालों ने इतना बुरा चित्रित किया है, यदि सचमुच होता तो लज्जा से सर झुका लेता। योरोप का धर्म इतिहास (History of the church) इसका साक्षी है। 'इनक्वीजीशन' के कानून ने क्या कुछ अत्याचार नहीं किया? यह कानून पुरोहित-राज पोप की तृष्णा-पूर्ति के लिए धर्म-विरोधी की खोज करके उसे प्रताड़ित करने के लिए बनाया गया था। बेचारे 'मूर' जैसे सज्जनों की हत्या का

दायित्व धर्म या ईश्वर के ही सर पर है। ग्लेंको के हत्याकाण्ड में भी पापिष्ट ईश्वर और धर्म का ही हाथ था। धर्मान्धता के नाश के साथ ही साथ पाश्चात्य देशों के अभ्युदय का इतिहास आरम्भ होता है और धर्म व ईश्वर के पतन से ही सोविएट सरकार के जन्म का सूत्रपात रूस में हुआ। इतनी ऐतिहासिक घटनाओं के होने पर भी जो धर्म के नशे के मतवाले हैं, उन्हें बुद्धिमान समझें या क्या? यह हमारी समझ में नहीं आता।

भारत में भी शैवों, शाक्तों, वैष्णवों की पारस्परिक कटाछनी का पता पुराणों से मिलता है। स्मार्तों, तांत्रिकों और श्रोत्रियों के बैर भाव का हाल हिन्दू मात्र अपने ग्रन्थों को पढ़कर जान सकते हैं। मुसलमानों की पारस्परिक धार्मिक दलबन्दियों और झगड़ों का हाल जानना हो तो 'असना अशारिया' नामक पुस्तक को पढ़कर देखिये। यह पुस्तक फारसी भाषा में भारत में भी मिल सकती है। सम्भवतः इसका उर्दू संस्करण भी मिलता होगा। इसमें बहत्तर फिरकों के भेदों का वर्णन है।

बौद्धों और वैदिक धर्मावलम्बीय ईश्वरवादियों में जो झगड़े हुए वह भी हमसे छिपे नहीं हैं। शंकर स्वामी के शिष्यों ने बौद्धों के साथ जो जबरदस्तियाँ कीं उन्हें हम चाहें तो अच्छी तरह पुस्तकों को पढ़कर जान सकते हैं। जैनियों में श्वेताम्बरी दिगम्बरी, तेरह पंथी, स्थानकवासी और आत्मारामी प्रभृति सम्प्रदायों की मोर्चेबन्दी, झगड़े-लड़ाई हमारी आँखों के सामने है। यदि धर्म की कल्पना न होती तो इन सारे झगड़ों का भूमण्डल पर नामोनिशान न होता, न इतिहास के पृष्ठ इन अमानुषिक कृत्यों से गन्दे होते। इन सबका दायित्व ईश्वर और धर्म को मानने वालों पर ही है।

संसार की उत्पत्ति को धनपात्र, राज्याधिकारी और पुरोहित-मण्डल खूब बेदर्दी के साथ उड़ावेंगे, क्योंकि ईश्वर ने उन्हें दिया है। बिचवनिए दलाल, सटोरिए, छोटे व्यापारी बचे हुए को भोगने के लिए बने हैं। राज कर्मचारी और सैनिक मनमानी सम्पत्ति का विध्वंस करेंगे। लेकिन जनसमूह को वही टुकड़ा और धक्का बदा है। इनके लिए इनके ईश्वर का आदेश ही यह है कि निर्धन तो संसार में बने ही रहेंगे, तुम खाओ-पीओ, मौजें मारो। क्या हम लोग ऐसे ईश्वर की परवा करते पड़े रहेंगे? अब संसार के भुक्कड़ों की श्रेणी, गरीबों का नाम, गरीबों का दृश्य मिटाना होगा और इस काम के लिए ईश्वर को अर्द्धचन्द्र देकर निकालना अनिवार्य है। हमें अब पक्षपाती, निर्दय, कल्पित ईश्वर की जरूरत नहीं रही।

अब वह समय नहीं रहा कि मुसलमानों के बालक कुरान रटने में अपने जीवन का पवित्र और उत्तम अंश बरबाद कर डालें या ईसाई बालक इंजील की आयतों, गीतों, या भजनों में जीवन गँवावें। न अब दूसरे ही धर्म वाले अपने धर्म के नाम पर अच्छे काम करने के स्थान पर आँख बन्द कर दकियानूसी रद्दी किताबों के मंत्र या आयत अगणित बार बड़बड़ावेंगे। संसार होश में आता जाता है और पुरोहिती तथा कल्पित

बेहूदगियों का अन्त होने वाला है। अब महात्मा मसीह की यह अयौक्तिक शिक्षा कि 'जो तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे उसे अपना दूसरा गाल भी फेर दो' संसार को धोखे में नहीं डाल सकती। हम देखते हैं कि गाय, भेड़, बकरी आदि सीधे प्राणियों को उनकी शान्तिप्रियता के कारण कोई नहीं छोड़ता। रोज बड़े-बड़े मौलवी पादरी और पण्डित उन्हें मार-मारकर हड़प करते चले जाते हैं। शेर और चीतों का न कहीं बलिदान होता है, न कुरबानी, न इनको कोई मारकर खाता है। इसलिए ऐसी उलटी शिक्षा देने वाले अब संसार में प्रतिष्ठा नहीं पा सकते।

म. मसीह कहते हैं–'Thou shalt not kill thy neighbour.' 'A christian has no right to exploit his brother.' 'Turn thy right cheek when smitten on the left.'

तू अपने पड़ोसी को मत मार (यहाँ पड़ोसी का अर्थ है हरेक मनुष्य)। पर क्या जर्मनी, फ्रांस, इटली और ग्रेट ब्रिटेन के ईसाई चुपचाप बाएँ गाल पर थप्पड़ खाकर दाहिना गाल दूसरे तमाचे की प्रतीक्षा में फेर देते हैं? आपस में थोड़े से आदमियों के लाभ के लिए लाखों के गले नहीं काटते-कटवाते? क्यों अपने पड़ोस के लोगों को लूटने की ही चिन्ता में ईसाईयों और मुसलमानों का समय बीतता है? फिर हम धर्म के झूठे ढकोसलों में फँसना कैसे पसन्द कर सकते हैं। लुटेरे लोग और डाकू जातियाँ धर्मउपदेश को सुन-सुनकर मन में मुसकराती और कहती हैं 'लो मौलवीजी, पादरी साहब, पण्डित महाराज हम आपको धन देते हैं, आप दुनिया को उपदेश करें जिसमें सब सोते हुए बेहोश पड़े रहें और हम सबको खूब लूटें।' इस दशा में क्या ईश्वर की कल्पना निर्धनों, कमजोरों और भोली-भाली सर्वसाधारण जनता के लूटने का एक खासा साधन नहीं है? है, इसलिए ईश्वर और धर्म को जितनी जल्दी संसार से नेस्तनाबूद कर दिया जाये उतना ही अच्छा।

मनुष्य का कल्याण इसी में है कि वह नैसर्गिक नियमों के अनुसार चले, क्योंकि उनको उसी ने प्रत्यक्ष किया है। उसके सर पर किसी व्यक्ति या समष्टि ने उन्हें जबरदस्ती नहीं लादा। जो ऐसे नियमों को मानते हैं, जिन्हें किसी डाकू या डाकुओं के गिरोह ने बनाकर अपने या कल्पित ईश्वर के नाम से जारी किया है वह क्या बज्र मूर्ख नहीं है? वह बिना सींग और पूँछ के पशु है और जो इस तरह नियम बनाकर धर्म या अधिकार के नाम पर उन्हें लोगों से मनवाते हैं वह जंगल के हिंसक पशुओं के मौसरे भाई हैं। अधिकार प्राप्त पुरोहितों, शासकों और धनपात्रों का यह स्वाभाविक लक्षण है कि वह जनसमूहों के दिल और दिमाग को—मन और बुद्धि को—मुर्दा बनाकर छोड़ देते हैं। इसलिए अधिकार प्राप्त लोगों के हृदय और मस्तिष्क दोनों कुत्सित होते हैं। यह कुत्सित हृदय लोग विद्वानों, वैज्ञानिकों, बड़े-बड़े लेखकों और वक्ताओं को धन

देकर अपना गुलाम बना लेते हैं। हम तो रोज बड़े-बड़े सिद्धान्त की डींग मारने वालों, सन्यास का झण्डा उठाने वालों, राजनीति में बाल की खाल खींचने वालों, दम्भपूर्ण नेताओं को धनिकों के सामने कठपुतली की तरह नाचते देखते हैं। इनमें से एक भी निर्धन और गरीबों में रह कर, उनका सा जीवन व्यतीत करके उन्हें उनके स्वत्वों से सावधान या जानकार करने नहीं जाता। मैं नहीं समझता कि ईश्वर और धर्म किस मर्ज की दवा है? धर्म ज्ञान किस खेत की मूली या बथुआ है? सम्प्रदायों और समुदायों के नेता किस जंगल की चिड़िया हैं? आज यदि हम इस अन्धविश्वास को छोड़ दें, ईश्वर, धर्म और धनवानों के एजेण्टों व नेताओं से मुँह मोड़ लें। अपने पैरों पर खड़े हों, तो आज ही हमारा कल्याण हो सकता है। हम किसी की प्रतिष्ठा करने के लिए नहीं पैदा हुए, हम सबके साथ समान् भाव से रहने के लिए जन्मे हैं। न हम किसी के पैर पूजेंगे न हम अपने पैर पुजवायेंगे,न हमें ईश्वर की जरूरत है, न पैगम्बर और अवतार की, न गुरु बनने वाले लुटेरों की।

न्यायनुमोदित, धर्मानुमोदित या उचित वही है जो बुद्धि-ग्राह्य हो, विज्ञानानुमोदित हो, मनुष्य-स्वातंत्र्य का संरक्षक हो। इसके विरुद्ध सारे अधिकार, सारी व्यवस्थाएँ मिथ्या हैं, त्याज्य हैं, अत्याचाराश्रित और घातक हैं। किसी ने ठीक ही कहा है कि 'हमारा अवतार और पैगम्बर विज्ञान है, हमारा धर्म विवेक है, हमारा खुदा संसार के मनुष्यों का समूह है।' ईश्वर और उसके आश्रित धर्म और राज्य दोनों ही मनुष्य के प्रधान शत्रु हैं। जहाँ अधिकार के नाम पर काम होता है वहीं ईश्वर और शैतान की पैदाइश होती है। दोनों ही अजीबुलखिलकत जीवों को धक्का देकर सुखी होने के लिए हमें इनके पिता 'अधिकार' का नाश करना ही श्रेयस्कर है। आज तक धर्म के नाम पर हमें लुटेरों ने जितना लूटा है, वह सब हम वापस लेने का प्रयत्न करें और सबसे प्रधान डाकू 'ईश्वर' के पैरों को महीमण्डल पर जमने न दें, यही हमारा इस समय प्रधान कर्त्तव्य है।

ईश्वर के पूजने वाले, दासवृत्ति का समर्थन करने वाले कहते हैं कि यदि धार्मिक बुद्धि वालों को देश का या और किसी संस्था आदि का काम सौंपा जाये तो वर्त्तमान् समाज भी बुरा नहीं है। कानून बुरा नहीं होता, बरतने वाले ही बुरे होते हैं। ईश्वर बुरा नहीं है, उसकी आज्ञा को न मानने वाले ही बुरे हैं। राजा अच्छा भी होता है, बुरा भी। बुरा राजा बुरा है। बुराई बुरी है, न कि राजा का पद ही बुरा है।

यह हमारे भोले भाइयों की नादानी है। भाँग बुरी नहीं है, हाँ, भाँग पीकर होश खो देने वाले बुरे हैं। वाह वा। मैं कहता हूँ कि कानून हो ही क्यों? न कानून होगा न कोई उसे बुरी तरह से बरतेगा। न खुदा होगा, न उसके नाम पर हजारों लाखों टन कागज रद्दी किया जायेगा। मनुष्य यदि सोचकर अपने समाज का संगठन करें, तो वह

ईश्वर, राजा, कानून के बिना भी बहुत आनन्द के साथ रह सकते हैं। खास कर खुदा जैसी पहेली तो नितान्त ही अनावश्यक और व्यर्थ है। मैंने गत 27 वर्षों से खुदा की परवा नहीं की, इससे मेरा कुछ भी हर्ज नहीं हुआ, उलटे सब काम बहुत अच्छे हुए हैं। मैं पहले से अधिक संयमी, मनुष्य-भक्त और समाज-सेवा का प्रेमी बन गया हूँ, क्योंकि मैं अपने कामों को ही प्रधानता देता हूँ। हिन्दू महासभा के सभापति की तरह मैं यह नहीं कहता कि 'ईश्वर हमें शक्ति से भर दें, हमें हिम्मत दें और हे सरकार हमारी रक्षा कर, हम तुझे चेतावनी देते हैं कि यदि तू ने हमारी रक्षा न की तो हम रो देंगे। तेरे परदादा ईश्वर का नाम ले-लेकर हाय-हाय मचावेंगे।'

मैं कहता हूँ कि मनुष्य बल से पूर्ण है, वह उसी से काम ले। भीख माँगना, प्रार्थना करना, हमें नीच और कायर बनाता है, जो ज्यादा गायत्री जपी जायेगी तो हिन्दू भी चोरी, डकैती, लड़कों, औरतों का चुराना आदि नीचता सीख लेंगे। ईश्वर मूर्खों के लिए अँधेरे का घर है। बस, इस सम्बन्ध में इस समय मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ।

('माधुरी', नवम्बर 1925 से फ़रवरी 1926 तक)

सत्यं धर्म सनातनः

(1)

क्या यह सत्य है कि सत्य ही सनातन धर्म है? वृक्षों से समुन्नत होकर मनुष्य बनने तक तो हमें इतना समय लगा होगा जिसका हिसाब लगाना किसी भी विकासवादी के लिए अभी सम्भव नहीं प्रतीत होता। दादा डार्विन की ही बात पर विचार करें तो बानर से नर और बानरी से नारी बनने में पूँछ घिस कर लूमस्थल सपाट होने में ही कोट्यानुकोटि वर्ष लग गये होंगे। इस बीच में इन बापुरे प्राणियों को अपनी आवश्यकता पूर्त्ति में, अपनी वासनाओं की सन्तृप्ति में, अपनी भूख-प्यास विदूरित करने की फिक्र में जिस मस्तिष्क की जरूरत पड़ी होगी उसकी उन्नति और अभिवृद्धि में न जाने कितना कष्ट उठाना पड़ा होगा। कौन कह सकता है कि बानर योनि में आने के बाद कितने दिनों में बेचारे ने अपने हाथों को चलने के काम से छुट्टी देकर पैरों के बल खड़े-खड़े चलना सीखा होगा। फिर उसके कितने दिन बाद उसके नन्हें से दिमाग में इतनी जगह हुई होगी कि जिसमें तर्क और ज्ञान के प्रकाश का समावेश हो, जिससे वह बेचारा सत्यासत्य का निर्णय कर सके। भूल, भय, मूर्खता, अज्ञान, आलस्य, अविद्या सदृश अनेक बाधायें भी थीं जिन्होंने सज्ञान होने पर भी प्राणियों को सत्य की खोज में उतने जोर से अग्रसर नहीं होने दिया जितनी जोर से कि वह होना चाहता था।

और आगे चलकर देखते हैं तो इतिहास साक्षी देता है कि अनेकानेक ठोकरें खाने पर जब हम प्रकाश के समीप आ गए और सत्य घटनाओं के आधार को सीधी, सच्ची और पक्की सड़क जानकर उस पर चलने लगे तो हममें ही अगणित वंचक उत्पन्न हो उठे। आ आकर अवतारों, नबियों, ज्योतिपियों, पण्डितों, पुरोहितों, मौलाना, मुल्लाओं ने हमें धोखा दिया, अवनति की ओर पैर पकड़कर घसीटा; राजाओं, सरदारों, हाकिमों, जमींदारों और साहूकारों ने अपनी अवधूती चाल चलकर जनता को वश पड़ते खूब मिट्टी में मिलाया, आजकल इन अवरोधक मशीनों में एक छलपूर्ण लीडरशाही और बढ़ गई है। फिर भी हम देखते हैं कि हम बन्दरों के वे दुम बच्चों में सच्चाई की तलाश घटती

नहीं वरन् बढ़ती जा रही है। इसी से मैं समझता हूँ कि सत्य की खोज मनुष्य का स्वाभाविक धर्म है। यह बिलकुल ठीक है कि 'सत्यं धर्म सनातनः'।

प्रिय वाचक वृन्द, पहले पुरोहित कुलोद्भव पण्डित राजों ने, जिनमें बुद्धि और तर्क व दर्शन ज्ञान से दबे हुए कितने ही एम. ए., बी. ए. भी शामिल हैं, मेरे एक लेख पर हजारों ही बेतुकी गढ़ गढ़कर सुनाई हैं। लेकिन एक ने भी प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाण न दिया कि जिसमें ईश्वर संसार के भावी समझदारों के लिए कोई वास्तविक पदार्थ सिद्ध हो जाता। इसी प्रकार मुझे आशा है कि सैकड़ों दावे बे दलील मेरी 'सत्य की व्याख्या' पर होंगे। इन पाण्डित्याभिमानियों को यह पता नहीं लगता कि संसार बदल रहा है। आज ऐसा कोई भी समझदार नहीं जो डेढ़ हजार, ढाई हजार, पाँच, सात, दस हजार वर्ष की पुरानी पुस्तकों की जंगली कहानियों और निर्मूल गपोड़ों में सन्तोष प्राप्त कर सके। कोरे महात्माओं को चाहे कुरान में शान्ति मिलती हो चाहे बाइबिल में, चाहे पौराणिक गाथाओं में लेकिन सांसारिक जीवों को तो विज्ञान की कसौटी पर कसे हुए, तर्क की आँच पर तपाए हुए सत्य में ही शान्ति की झलक दिखाई देती है। बुद्धदेव ने ठीक कहा है कि सत्य ही सब कुछ है। सत्य की खोज में फिरना मानव जीवन का एक सर्वोत्कृष्ट ध्येय होना चाहिए। एक अंग्रेज विद्वान एडीसन भी, इसी का समर्थन करता है–There is nothing so laudable as to hanker after truth. पण्डित शिरोमणि कन्हैयालाल अलखधारी ने सत्य की महिमा अपने 'सच्चे स्नान' नामक ट्रेक्ट में लिखकर हमें सावधान किया है कि 'सत्यमेव जयति नानृतम' सत्य है। सत्य की व्याख्या में 'मनुदेव' से लेकर आज तक हिन्दू जगत में होने वाले विद्वानों ने बहुत कुछ कहा है, लेकिन 'बेबिल' ने अपनी सत्य की व्याख्या में कमाल कर दिया, कलम तोड़ दिया, पाखण्डियों का मुँह मरोड़ दिया, मानव जगत् में सत्य का वास्तविक रूप चित्रित करके दिखा दिया है।

क्या इस भ्रममय और घोर तमाच्छादित जीवन में आलोक्यप्रद सत्य के समान और महत्त्व वाली लाभदायक बड़ी बात हो सकती है? मैं तो यही कहूँगा–नहीं। सत्य जगत् का ज्ञान धन है, उसे डूबने से बचाने वाली नाव है, उसे अन्धकार से निकालने वाला प्रकाश है। सत्य की खोज में व्यस्त होने के बराबर दूसरा कोई व्यापार या व्यवसाय हो नहीं सकता।

सत्य उन्नति की जड़, काण्ड, शाखा और पत्ती सब कुछ है। आनन्द की जननी और जनक सच्चाई ही है। सत्य मन को शुद्ध करता है, विचार को पवित्र करता है, आकांक्षाओं और आदर्शों को उच्च बनाता है। सत्य का नाम सभ्यता, मनुष्य-भक्ति और दयालुता है। सत्य के जानने की महत्त्वाकांक्षा के बराबर क्या कोई दूसरी आकांक्षा हो सकती है? सत्य से हमें शक्ति मिलती है। सत्य ढाल और तलवार दोनों का एक साथ

काम देता है। सत्य गुरु, मित्र, पुत्र और सहायक सब कुछ है। यह तो जीवन-ज्योति है।

जो एक सत्य बात खोज निकालता है वह ऋषि है, उसका यह खोज-वृत्तान्त वेद है, उसके जलाये हुए प्रदीप के प्रकाश से संसार को उजाला मिलता है। लेकिन सत्य मिलता कैसे है? खोज, अनुभव और शुद्ध तर्क से, निष्पक्ष अन्वेषण, स्वतंत्र विचार वाले दिमाग की लगन से। प्रत्येक नर-नारी को स्वतंत्र खोज का पूरा अधिकार है। चाहे जितनी खोज करे, बने जितनी करे, उसके इस नैसर्गिक अधिकार में जो बाधा डालता है वही पापी है, दुष्ट है, अत्याचारी है, मानव संसार का चिर शत्रु है। संसार के साहित्य पर मुहर लगाकर रखना नीचता है। भूमण्डल का साहित्य-द्वार हर एक के लिए खुला होना चाहिए, छिपाना, बन्द करना, लट्ठ के बल से रोकना अच्छा नहीं। मनुष्य के ही लिए सारे पवित्र विचार हैं। किसी विषय को छिपाकर रखना उस विषय की पवित्रता और महिमा को बढ़ाता नहीं वरन् नष्ट कर डालता है। हममें से प्रत्येक अपने शुद्ध सच्चे भावों को कह सके, अपने तर्क से काम ले सके, यही ठीक मनुष्योचित बात और व्यापार है।

जो अन्वेषक को, किसी भी सत्य के ढूँढ़ने वाले को, गुप्त ज्ञान के प्रकाशक को इस लोक या परलोक के दण्ड का भय देता है, वह मनुष्य जाति का शत्रु है। वह दगाबाज है जो परलोक या आकबत में आनन्द भोग का प्रलोभन देकर सत्य पर पर्दा डालता है, अन्वेषक का मुँह बन्द करता है। क्या उत्कोच द्वारा सत्य का प्रकाश न होने देना पाप नहीं है? प्राणियों का जिससे वर्तमान या भविष्यत् में अहित होता है वही पाप है। बिना विचार-स्वातंत्र्य खोज असम्भव है। राजा और धर्म का भय बाधक है। खोज बुद्धि तर्क के आधार पर होती है, अन्ध-परम्परा के भरोसे सत्य की खोज होना सर्वथा असम्भव है। सत्य के जिज्ञासुओं, अन्वेषकों को या खोज की चाह रखने वालों को चाहिए कि भय को छोड़ दें, अपने भीतरी प्रकाश से काम लें, भीतर बाहर सच्चे हों, अपने मन की प्रयोगशाला में अकेले बैठकर, संसार के सिद्धान्तों को, वादों को इति-वृत्तियों के आधार पर विश्लेषण संश्लेषणपूर्वक खूब छानें। धर्म, राजा और पुरोहित सबका भय छोड़कर अपने श्रम से प्राप्त फल को जैसा का तैसा संसार के सामने रख दें। यही स्वतंत्रता है, यही पुण्य है, यही कर्त्तव्य है, यही मानसिक पवित्रता है। देव, देवी, राजा, गुरु, पुरोहित, धर्म और ईश्वर किसी के भय से सत्य का छिपाना पाप है। किसी के कहने से अपने तर्क, युक्ति, ज्ञानानुमोदित बात को क्यों छिपावें?

जब वह जमाले दिल फ़रोज़, सूरते मेहर नीम रोज़।
आप ही हो नज़ारा सोज़, पर्दे में मुँह छिपाये क्यों।।

हाँ, हमारी खोज में लगाव, झुकाव न हो; आत्मान्वेषित शुद्ध सत्य की खोज की

रक्षा करने की हिम्मत हाथ से न जावे; प्रेम, भक्ति, ईर्ष्या, द्वेष, भय, दोस्ती, दुश्मनी हमारे विचार में खलल न डालने पावें। हमें तो सच्चाई की तलाश है और बस—और कुछ नहीं। हममें से हर एक का स्वत्व और दायित्व सत्य की खोज है। हम जानते हैं कि सत्य से हानि नहीं हो सकती, हानि होती है भूल से, असत्य से। सत्य को खोजने वाला बड़े-बड़े नामों, बड़े-बड़े ग्रन्थों के प्रमाणों, रीतियों और रिवाजों की कुछ परवा नहीं करता, जब तक कि उसका विवेक परवा करने को बाध्य न करे। अन्वेषक अपने हृदय का एकमुखी राजा है, पर अत्याचारी नहीं। इसके राज्य में छल, भय, और धींगा-धींगी को कदापि बसने की आज्ञा नहीं होती।

सत्य सत्य ही है, बात नई हो या पुरानी, नर की हो या नारी की, बूढ़े की हो या बालक की, पण्डित की हो या मूर्ख की, जिन्दे की हो या संसार परित्यक्त की। हम पुराने आदमियों, प्राचीन ग्रन्थों की झूठी, बेहूदी बात इसलिए सत्य नहीं मान सकते कि उन्हें अमुक महालेखक ने लिखी है, अमुक प्राचीन ग्रन्थ में लिखी है। न हम किसी नौजवान या बालक की और नवीन ग्रन्थ की सत्य बात को इसलिए ठुकरा सकते हैं कि उसे एक नवयुवक या बालक ने कहा है, कि वह किसी आधुनिक ग्रन्थ में लिखी हुई है। प्राकृतिक सौन्दर्य को किसी तरह गहने-कपड़े आदि सजावट की जरूरत नहीं होती, जैसे लाल गूदड़ों में भी चमकता रहता है, उसी तरह सत्य को बनाव, चुनाव, साज-शृंगार की आवश्यकता नहीं। झूठ, छल या पाप व कायरता को ही ख्याति, उच्च स्थान, उत्तम वेशभूषा और छत्र दण्डादि की जरूरत हुआ करती है। हम तो सत्यग्राही हैं। हमें इस बात की परवा नहीं कि दादाओं का क्या मत था, हम किस सम्प्रदाय या समुदाय के हैं, किसका क्या कथन है, क्या सिद्धान्त है। जो कुछ भी हो, सत्य है तो शिरोधार्य, असत्य है तो बहिष्कार्य। न किसी को करनी चाहिए और न कोई समझदार, चतुर, प्रतिभावान, सच्चा कभी बहुमत और अल्पमत की परवा करता है।

उसे तो सत्य से काम रहता है। वह जानता है कि बहुमत सदा मूर्खों का ही बना होता है। बिना विचार किये ही हाथ उठाने वालों का समुदाय प्रायः बहुमत बनाया करता है। यह सत्य के ग्रहण करने और असत्य के परित्याग को सदा तैयार बैठा रहता है, यदि सावधान किया जाये। इतिहासों के पढ़ने से क्या लाभ? यही तो कि विगत-इतिहास को पढ़कर उन भूलों से बचें जिनमें पड़कर अन्य जातियों ने हानि उठाई अर्थात् भूलों को हटाने और सत्य की स्थापना करने की इच्छा ही इतिहास-पाठ की ओर हमें प्रवृत्त करती है।

ज्योतिष, आयुर्वेद, खगोल, भूगोल, भूगर्भ इत्यादि-इत्यादि जितनी भी विद्याएँ या विज्ञान हैं, सब किसी सच्ची बात की खोज करते हैं। यहाँ तक कि गप्प प्रधान कविता भी अपनी तह में किसी सच्चाई की तरफ इशारा करने का दावा करती है। लेकिन सत्य

के अन्वेषी को इस गप्प कविता की जरूरत नहीं, वह न्यारियों की तरह कुपदार्थों को अलग फेंक देता है। रासायनिक अपनी प्रयोगशाला में बैठा-बैठा प्रकृति के गुप्त भण्डार की खोज करके सच्चे मोती के निकालने में व्यस्त रहता है। जहाँ देखिये सत्य की ही खोज है। हाँ पैसा ठगने अथवा मूर्खों का गोल बढ़ाने के लिए गप्प गढ़ने वालों की संख्या भी बहुत है। इन्हीं से बचने के लिए हमें सत्य की व्याख्या की जरूरत पड़ी है।

(2)

सत्य का ही पर्याय विज्ञान है। प्रत्येक विज्ञान का विद्यार्थी सत्य की ही खोज में लगा रहता है। वह धर्म-प्रचारकों की तरह सत्य की आँखों में धूल झोंककर सत्य को छिपाने की चिन्ता नहीं रखता। मनुष्य में सच्ची बात कहने की हिम्मत होनी चाहिए। परवा नहीं, मरे हुओं ने क्या कहा या जीवितों का क्या विश्वास है। सच्चाई ही बुद्धिमानों की ईमानदारी है। इसी में उनका और औरों का भी भला है। जो धर्म या लट्ठ का भय दिखाकर किसी को सत्य बोलने से रोक रखता है, वह सभ्यता का नाशक, मनुष्य जाति का घोर शत्रु-कट्टर दुश्मन है। जो राज्य के नियन्ता और धर्म के संचालक अपने विचारों के प्रकट करने के अधिकार का दावा करते हैं और दूसरों के उसी अधिकार को अस्वीकार करते हैं, वे अन्यायी और असत्य के समर्थक हैं। कोई विचार कैसा भी पवित्र, शुद्ध और निर्दोष क्यों न हो दूसरों को अधिकार है कि उसकी जाँच करें—उसकी आलोचना-प्रत्यालोचना करें। कौन जानता है कि कौन सा विचार पवित्र है। कोई भी विचार मेरे लिए पवित्र नहीं है, जिसकी बाबत मैं यह न जान लूँ कि यह सच्चा है। स्वतंत्र विचार प्रकट करना एक मुद्दत से राजा या राज्य और ईश्वर की अवज्ञा का कारण समझा जाता है। यह क्या? कुरान के किसी विचार के विरुद्ध मुँह खोला कि मुरतिद, मुनहरिफ और इंजील की समालोचना की कि हियरटिक बनाया गया, वेदों, शास्त्रों के किसी वाक्य में शंका उत्पन्न हुई तो 'नास्तिको वेदनिन्दकः' कह कर उसका तिरस्कार किया गया। सोक्रेटीज और गलेलियो का दण्डित होना, कादियानियों का काबुल में पथराया जाना, स्वामी दयानन्द की हत्या करना, बौद्ध भिक्षुओं का देश से बहिष्कृत किया जाना, धार्मिक अत्याचारों के जीते-जागते प्रमाण हैं। लो. तिलक को कई बार कैद क्यों हुई, म. गाँधी को जेल क्यों भेजा गया, आज अनेक नवयुवक जेल में क्यों सड़ रहे हैं? स्वतंत्र विचारों के प्रकट करने के कारण।

स्वतंत्रता, वादानुवाद, ईमानदारी, खोज और हिम्मत सत्य के सहायक सखा हैं। इनका अपमान करना सत्य का अपमान है। सत्य का प्रेम प्रकाश से है, सरे मैदान से है, खुली बात से है। सत्य मनुष्य के ज्ञानेन्द्रियों, मनुष्य के विवेक, तर्क और अन्य

समस्त मानसिक गुणों से उपनीत होकर कहता है—सोचो, विचारो, समझो मैं कहाँ और कैसे हूँ। इसके लिए बलवान निर्बल पर, मनुष्य-मनुष्य पर अत्याचार करे; यह न्याय है, सत्य है, धर्म या है पाजीपन ?

सच्चाई नहीं चाहती कि लोग लट्ठ के सामने सिर झुकाकर प्रणाम करें, आदाब करें, होमेज के लिए उद्यत हों, पेट के बल चलें, पुरुषों की गुदा और स्त्रियों के गुह्य स्थान में लकड़ी की जाये। भय दिखलाकर नमस्कार प्राप्त करना सत्य सदा बुरा समझता रहा है और रहेगा। हम सत्य की सेवा क्यों करें? खोज, ईमानदारी, भद्रता की क्यों जरूरत है? प्राणी मात्र के सुख के लिए। यह स्वतंत्र विचार वाले प्रत्यक्षवादी का उत्तर है। अन्धविश्वास सत्कर्म नहीं हैं। बिना तर्क और बुद्धि के सहयोग किये कोई बात 'निर्णीत' (settled fact) नहीं हो सकती।

यह सत्य और विचार स्वाधीनता का ही फल है कि संसार ने इतनी वैज्ञानिक उन्नति की। यदि इसके मार्ग में धर्म, छल और राज-कैतव की रोकें न होतीं तो आज जगत् कई शताब्दी आगे आने वाले समय को कभी का प्राप्त कर चुका होता। प्रकृति के भेदों का उद्घाटन, प्रकृति पर विजय पाना, मार्ग की नैसर्गिक बाधाओं को दूर करने का साधन सत्य है। हम देखते हैं मनुष्यों में भूख-प्यास का कष्ट बढ़ रहा है, रोगों की वृद्धि हो रही है, नाना प्रकार की यातनाएँ सामने खड़ी हैं, कद छोटे होते जाते हैं, उमर घटती जाती है, पेट के लिए प्रेम बेचा जाता है। यह सब कैसा नाटक है? अन्न, वस्त्र, घर, ईंधन, भैषज आदि विहीन कानून से शान्ति कैसे स्थिर रहेगी? संसार सुखी कैसे हो सकेगा? इस लोक में यों ही पैर घसीटते रहो। परलोक में बड़ी-बड़ी हवेली, दूध, मधु, मक्खन, मद्य वगैरह के समुद्र, सुन्दर-सुन्दर जरतारी रेशमी वस्त्र और जवाहरात जड़ित सोने के गहने मिलेंगे, इसलिए या इसलिए कि हम सुख और शान्ति से घर में खाने-पहरने की झंझट को छोड़कर मरणोन्मुख हो चैन की वंशी बजाते रहें और आनन्द से डण्ड पेलें। अगर इसमें जरा भी गलती हुई तो पुलिस का लट्ठ, जज का फतवा और जेलर का सोंटा सिर पर धरा है। अगर यह बातें ठीक इसीलिए हैं तो हुजूर का सत्य बड़ा विचित्र है, इतनी टेढ़ी खीर है कि उसको निगलते ही हलक फट जाता है। ऐ सच्चाई तू किधर है? कैसी है? क्या ऐसी ही है, जैसा हमें धर्म और राजशासन बतला रहे हैं? अगर तुझे हम ऐसा जानते तो तेरी उपासना न करते, तुझे दूर से ही नमस्कार कर लेते। परन्तु हमें पूर्ण विश्वास है कि सच्चाई! तू है, सनातन है, मानव धर्म है, सुख का हेतु है, तू ही आनन्द है तू ही चैतन्य है, तू ही अक्षर है।

यह भूमण्डल अभावों और दुर्गुणों का भण्डार हो रहा है, भयानक सर्पों से आकीर्ण है, इसमें मूर्खताजन्य भय और पूजा प्रधानता प्राप्त कर चुकी है, सावधान! सावधान!

देखो, अब परलोक का राज-राजेश्वर, सातवें आसमान पर अद्वितीय चौकी पर

विराजमान बादशाह पदच्युत किया जायेगा, नरक की यातनाओं का नामोनिशान मिटाया जायेगा, कुम्भीपाक, रौरव, संहार और कालसूत्र आदि नरकों को सदा के लिए उठा दिया जायेगा, हवालातों, जेलखानों की जरूरतें मिटा दी जायेंगी। समय समीप है जब सत्यदेव की पूजा का विस्तार होगा, लोग अपने दिमाग समुन्नत कर सकेंगे, बुद्धि बढ़ा सकेंगे। हम देखेंगे कि प्रकृति ही हमारा धर्म-ग्रन्थ है, इसी के पाठ से सत्य की जय होगी, असत्य मिटेगा और संसार सुखी होगा।

मनुष्यो, अपने ऊपर विश्वास करो, अपने पैरों खड़े हो। भाग्य के भरोसे पर जीने वालो! अदृश्य अज्ञात परमेश्वर से भिक्षा माँगकर तुम पेट नहीं भर सकते, इसलिए संसार में मनुष्य की तरह जी भी नहीं सकते। आपने शेखचिल्ली की कहानियाँ सुनी हैं, आपके पास बेमूँड़-गोड़ की कथाओं का भण्डार भरा पड़ा है। उनसे तुम्हारा क्या बना? हिन्दुओ, तुमको सहस्रों वर्षों से सुख की नींद सोना, निश्चिन्त बैठकर पेट भरना नसीब नहीं हुआ। अगर इन परलोक की कहानियों से पेट भरता होता तो तुम कभी इतने भूखे-नंगे नहीं हो सकते थे। प्रकृति से बड़ा कोई नहीं है। मनुष्य ही अपना भाग्य-विधाता, दूसरे मनुष्य का भी विधाता है। मनुष्य-समाज एक बनकर, मिलकर प्रकृति का स्वामी बन सकता है। वृक्ष, धरती, सड़क, कंकड़ियाँ, नदी, वन, उपवन, पहाड़ सभी मिलकर हमें एक नया वृतान्त, नई कथा बतला रहे हैं। आकाश के तारे, चन्द्र, सूर्य, प्रकृति के अंग हैं, व्याख्यान सुनो और मनन करो। सच्ची उमंग, सच्चे उत्साह से मनुष्यवत् बने रहो।

सिजदे से गर बहिश्त मिले दूर कीजिए,
दोज़ख़ सही पै सर का झुकाना नहीं अच्छा।

मैं समझता हूँ, लोग सुनते-सुनते घबरा गये होंगे। पर मैं क्या करूँ, यह सत्यदेव की सच्ची कथा है, दिलजलों की आह है, पचास वर्ष के दुखमय जीवन का अनुभव है। इसे आप चाहते हैं तो सुनें नहीं तो आपका अधिकार है आप इन दो-चार पृष्ठों को उलट जायें, दूसरी रोचक बात पढ़ें। मैं नहीं कहता कि आपको पढ़ना पड़ेगा, नहीं तो नरक के सुपुर्द या जेल के हवाले होना होगा। कहूँ भी कैसे न हाथ में इतनी शक्ति, न दिल में इतनी क्रूरता की इच्छा। हाँ, मैदान में डटा हूँ, अपनी खोई हुई सत्य की शक्ति को ढूँढ़ता हूँ।

न दस्ते कि बा यार दरावेजम मन।
न पाये कि अज मियानः बुगुरेजम मन।।

'आमदम बरसरे मतलब।' 'सत्यम् धर्म सनातनः।' क्या यह सत्य नहीं है कि नारियों के कष्ट नरों से कहीं अधिक हैं। इन्हें एक हजरत ने पति का गुलाम, दूसरे ने भोग का सर्वोत्तम पदार्थ बताकर और विचार ही दिल से निकाल दिया, तीसरे ने

यह लोक ही नहीं परलोक सी मिथ्या वस्तु की आशा के आधार से भी वंचित कर दिया और कह मारा 'नारियों की मुक्ति ही नहीं होती' और तो और विद्या के बोझ से दबे हुए अनेक दार्शनिकों ने भी इन्हें दबोचे रखने का पूरा प्रयत्न किया। जर्मनी के बड़े भारी दार्शनिक पण्डित शोपेनहावर साहब फरमाते हैं—Woman is not called to creat things . She pays her debt to life by the throes to birth, care of her children, subjection to her husband. The most intense utterances of life are denied her. Her life is destined to be less eventful and more trivial than that of man. It is her vocation to nurse and educate children because she is herself childish and remains an over-grown child. All her life is a kind of intermediate being between the child and the man who is the only proper human being.

भाषान्तर—महत्त्व के कामों के लिए नारियाँ नहीं होतीं। वह प्रसववेदना, बच्चे की सेवा और पति की दासता से अपने जीवन का ऋण चुकाती हैं। उसे अपने जीवन की गहरी बातों के कहने का भी अधिकार नहीं। उसके जीवन का नरों के जीवन से अधिक तुच्छ और कम घटनापूर्ण होना उसके भाग्य में हैं। उसका यही काम है कि बच्चों को पाले-पोसे, खिलाए-पिलाए, क्योंकि वह स्वतः बच्चों की तरह होती है और जीवन भर किशोर वयस्क बालक बनी रहती है। बच्चों और मनुष्यों के बीच का एक जीव नारी है, यथार्थ मनुष्य तो पुरुष ही है।

अर्थात् स्त्रियाँ मूर्ख, नादान, बेसमझ, केवल घर की टहल चाकरी के योग्य होती हैं। यही तुलसी बाबा भी कहते हैं—'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।' सुभान तेरी कुदरत! सुभान तेरा खेल! कितनी दूर की सूझी, कितना सुन्दर विचार है, कैसी महत्त्वपूर्ण खोज है—कैसी सत्य और न्याय की बात है? और हजरत शोपेनहावर की जबानी सुनिये—girls should be brought up to habits of domesticity and servility.

लड़कियों को घरेलूपन, नम्रता, सेवा-कर्म की शिक्षा-दीक्षा मिलनी चाहिए। जैसे मनु बाबा ने शूद्रों के लिए फरमाया है, 'सुश्रूपामनुसूयया।'

यह क्यों? इसलिए कि women are the most complete and hopeless philistines—स्त्रियाँ परिपूर्ण और आशातीत मूर्खा होती हैं। यदि यह बात डाक्टर बेसेण्ट सदृश विदुषी महिला ने पढ़ी या सुनी होगी तो उन्हें आश्चर्यान्वित होकर शोपेनहावर की आत्मा को बुलाकर पूछना पड़ा होगा कि यह बात है? क्योंकि श्रीमती वेसेण्ट साहबा सनातन धर्म का रहस्य समझती हैं। अमरीका, योरोप और रूस में विद्वान महिलाओं की कमी नहीं है, वह क्यों फिर लौट कर अविद्यान्धकार में जाना

ठीक समझेंगी। क्या पण्डिता उमा नेहरू ऐसे पुरुषों के मिथ्या विचारों का खण्डन करके 'सत्य' का झण्डा न उठायेंगी?

कोई भी देश ऐसा नहीं जहाँ की बाबत हम शोपेनहावर और उसी के से दूसरे अनेक विचार वाले दार्शनिकों के विचारों को सत्य समझ सकें। मूर्ख स्त्री हो वा पुरुष अनेक कारणों से होते हैं। परिस्थिति, शिक्षा-दीक्षा की सुविधा का न मिलना; बलवानों, धनवानों, विद्वानों का अत्याचार, आव-हवा, शारीरिक दोष आदि कुछ ऐसे कारण हैं जो नर-नारियों को मूर्ख बना देते हैं। इन बातों पर प्रकाश डालने के बदले, इन कारणों को दूर करने के स्थान पर जो कहता है कि अमुक अंश मनुष्य जाति का मूर्ख बने रहने के लिए ही बना है वह असत्य कहता है, सत्य का खून करता है। सत्य सनातन धर्म बतलाता जा रहा है और बतलायेगा कि अन्त में सत्य की ही जय होती है। हमें आशा है हमारे देश के नर-नारी यह सिद्ध कर देंगे कि उनका ज्ञानी, विद्वान्, बलवान् और स्वतंत्र मनुष्य बनना उनके हाथ में है, और इस तरह से बना करते हैं क्योंकि यही रीति सत्य और सनातन है।

(3)

ऊपर के दो लेखों में जो कुछ भी कहा है वह सब प्रत्यक्ष, प्राकृत एवं स्वयं सिद्ध सत्य है। मुझ से कोई पूछे कि कौन कहता है 'दासता स्वतंत्रता से अच्छी है?' तो मैं साफ-साफ कह दूँगा कि सारे पण्डित, पुरोहित, मौलवी, मुल्ले, पोप और बिशप कहते हैं कि ईश्वर की सच्ची आज्ञा, अपौरुषेय ज्ञान हमारे पास है, इसे आँख बन्द करके मान लो, इसी के अनुसार चलो, अक्ल को दखल न दो। जो कोई इस पुस्तक में लिखी हुई बातों को—जो अपौरुषेय हैं, मनुष्य-बुद्धि के बाहर है न मानेगा, वह अनन्त या असीम समय के लिए नरक की यातना भोगेगा या 'चौरासी' में फिरता फिरेगा। चाहे तुमको धर्म पुस्तक की बात कितनी ही खुराफात भरी नजर आवे पर उसे ज़रूर ही मान लो, नहीं तो तुम नास्तिक हो, मुरतिद हो इत्यादि। क्या यह मानसिक स्वतंत्रता है या गुलामी की कठिन बेड़ी?

हमारे गले में धर्म पुस्तकें आशा और भय के डोरे से बाँधी जाती हैं। एक ओर शैतान हमारी गर्दन दबोचने को तैयार है और दूसरी ओर परमेश्वर महाराज या अल्लाह मियाँ अपना डण्डा लिए लाल-लाल आँख दिखा रहे हैं। इस धर्म रूपी चक्की के दोनों पाटों के अन्दर मनुष्य आँख बन्द करके पिसे जा रहे हैं। इस पर भी कहा यह जाता है कि सत्यासत्य का विवेचन करने वाली बुद्धि तुम्हें मिली है, तुम स्वतंत्रतापूर्वक सत्यासत्य के निर्णय के अधिकारी हो। परमात्मा दयालु है वह तुम्हें स्वतंत्रता देता है कि तुम अपनी पसन्द से काम करो। बेचारे बेपढ़े दीन-हीनों

से पुरोहित जी कहते हैं, तुम वेदशास्त्र पढ़ कर नहीं समझ सकते, क़ुरान का समझना आसान नहीं, बाइबिल को जान लेना टेढ़ी खीर है। हमारे हाथ में स्वर्ग की कुंजी है; चले आओ हम तुम्हें अभी ठीक-ठिकाने पर पहुँचाये देते हैं। किसी ने ठीक ही कहा है :

गधे की लंगोटी में तीन मुहर सोने की
कहती है बुलबुल मैं पार लगा दूँगी सुन।

अर्थात् अज्ञानी लोगों का जीवन—लड़कपन, जवानी और बुढ़ाई, सोने की अशर्फियाँ हैं, बुलबुल—पुरोहित और पण्डित—इन्हें पार लगा देने का धोखा देते हैं।

हमारे ख़ैरखाह वकलाय खुदा फरमाते हैं कि धर्म-पुस्तक मनुष्य के तर्क की पहुँच से क़हीं परे हैं, मनुष्य-बुद्धि उसके रहस्य को नहीं जान सकती। मैं भी कहता हूँ,'बात सत्य है, मनुष्य-बुद्धि से खारिज पागलखाने के निवासियों के लिए ही आपकी धर्मपुस्तकें बहुत उपयुक्त हैं।'

इस तरह हमारे मन-मन्दिर से परम पूज्या भगवती बुद्धि को बहिष्कृत करके हमें नरक के भय रूप सर्प के सामने खड़ा किया जाता है और कहा जाता है—इस सर्प का भय करो नहीं तो तुम अपने आपको खो बैठोगे। मैं तो यही कहूँगा कि इस सर्प का सर कुचल दो, भय के भूत को विदा कर दो, आँख खोलो, देखो सत्यासत्य, उचित-अनुचित का भेद बतलाने वाली कसौटी तुम्हारे पास है। अगर दिमाग ईश्वर के भय की धुआँधार गरम हवा और धूल से भरी हुई आँधी से जल कर सहारा का जंगल बन गया तो तुम्हारा जीवन व्यर्थ हो जायेगा। हमें बच्चों की तरह बहलाने-फुसलाने के लिए केवल नरक का भय ही नहीं, किन्तु स्वर्ग के सुखों का प्रलोभन भी दिया जाता है। अगर तुम डर से बुद्धि को विदाई नहीं दे सकते तो बाबा कुछ उत्कोच (रिश्वत) लेकर ही अक्ल का खैरबाद कहो।

लेकिन स्वाभाविक सत्य सनातन धर्म कहता है कि बुद्धिमान समझदार, विचारशील व्यक्तियों की प्रतिष्ठा और निष्ठा उसी बात पर हो सकती है जिसकी जड़ में खुली ठोस सर्व-मान्य घटनायें हों, जिसका आधार विशुद्ध सत्य बातों पर हो। बात तो वही मानने लायक होती है जिसमें धमकी, घुड़की से काम न लिया गया हो, वासनाओं को न भड़काया गया हो, आशा और भय का सहारा न लिया गया हो बल्कि बुद्धि सीधे-सादे विस्पष्ट शब्दों में विवेक से काम लेने के लिए छोड़ दी गई हो और विवेक ने अपना आखिरी फैसला दे दिया हो। मन को सारी योग्यताओं ने, हमारे सारे इन्द्रिय ज्ञानों ने, हमारी बुद्धि ने मिलकर यह कहा हो कि अमुक बात निस्सन्देह मान लेने योग्य है, क्योंकि हमने इसे ता-छान कर खरा पाया है तो हम उसे जरूर मानेंगे, इसमें किसी भी पण्डित या पुरोहित की सिफारिश दरकार नहीं।

वाचक वृन्द! विश्वास किसी पुरस्कार या उत्कोच से पैदा नहीं होता। विश्वास की उत्पत्ति निर्दोष प्रमाणों से होती है। किसी इनाम या रिश्वत का वादा सबूत नहीं हो सकता। रिश्वत से बात की वस्तु-स्थिति पर कोई प्रकाश नहीं पड़ सकता, न इससे बात सिद्ध होती है, न इससे कोई सन्देह दूर होता है, न किसी शंका का समाधान इससे सम्भव है। रिश्वत या इनाम के बल पर किसी बात का किसी से मनवाना या कहलवाना ईमानदारी नहीं बेईमानी है, असत्य है, छल है, धोखा है, दुष्टता है, बदमाशी है। किसी हाकिम को—चाहे बदनाम पुलिस का सिपाही हो, डिप्टी कलक्टर, मजिस्ट्रेट हो, चाहे जज या जूरर हो—रिश्वत तभी दी जाती है या रिश्वत का वादा तभी किया जाता है जब झूठ को सत्य कहलवाना होता है। हमसे स्वर्ग के सुखों का वादा इसीलिए किया जाता है कि हम धर्म पुस्तकों की मिथ्या कल्पनाओं को सत्य कहने लगें। मनुष्यो सावधान! इस रिश्वत के वादे से बचो, नहीं तो तुम तो मारे ही जाओगे तुम्हारी आगे आने वाली सन्तानों का भी सत्यानाश होता रहेगा।

अगर मैं कह दूँ कि धरती के केन्द्र में एक ऐसा हीरा है जिसकी परिधि 500 मील है। मेरी इस बात का जो विश्वास करेगा उसे एक करोड़ रुपया इनाम मिलेगा। तो क्या आप इस बात को प्रमाण मान लेंगे? क्या यह वादा प्रमाण है इस बात का कि 500 मील परिधि वाला एक हीरा भूगर्भ में मौजूद है? बुद्धिमान लोग तो तर्कशास्त्र की कसौटी पर इस कथन को परखना चाहेंगे, युक्तियुक्त प्रमाण माँगेंगे, हाँ, धोखा देने वाले और ढपोरशंख लोग धन के लाभ से चाहे ऐसे झूठ को सत्य कहने लगें। मैं तो सभी धर्मों की पुस्तकों से उद्धरण देकर बतलाता कि मेरा दावा बिल्कुल सच्चा है, लेकिन मुझे विश्वास है कि 'मतवाला' महाराज इतने लम्बे लेखों को स्वीकार नहीं करते इसलिए यहाँ ही रुकना पड़ा। चमत्कारों, मोजज़ों, या और अनहोनी बातों को प्रघटित घटना बताकर लोगों की आँखों में धूल झोंकना धर्मनेताओं का ही काम है। इससे मनुष्य की मानसिक स्वतंत्रता पर पत्थर डाला जाता है। जहाँ आत्मोद्धार के लिए विश्वास को प्रधानता दी गई वहाँ बुद्धि का गला घोंटा गया है। इस प्रकार की बेहूदा बातों ने स्वत्व और दायित्व, भले और बुरे के पहचान की कसौटी पर पर्दा डाल दिया है।

मजा यह है कि इन सारी अनुचित चेष्टाओं के होते हुए भी जनसाधारण पर सनातन अर्थात् नैसर्गिक धर्म का प्रभाव बना ही रहा और समय-समय पर झूठ का पर्दा खोलने, असत्य का गढ़ ढाहने को अविश्वासी, नास्तिक निर्भीक लेखक और वक्ता होते ही रहे और सत्य की क्रमशः जय होती रही। आज हमें संसार का रंग पहले से बहुत बदला नजर आ रहा है। चाहे अल्लाह मियाँ आस्तीन चढ़ाये मेरी गर्दन नापने को तैयार क्यों न खड़े हों, चाहे धर्म नेता हमें रात-दिन ईश्वर महाराज की तलवार की धार और उनके जेलखाने की मुसीबतों की कथा सुनाया करें पर अक्ल तो इस बाजीगरी

को शिकस्त देकर ही चैन लेगी। इन धर्म के मक्ताओं ने (monopoly holder) कितने विरोधियों के प्राण नहीं लिए। इसी साल के भीतर कुरान के संरक्षकों ने सात आर्य समाजियों के खून पिये, पिछले इतिहास की दास्तान दुहराने की जरूरत नहीं। ऐसे बैकुण्ठ या बहिश्त की खरीद फरोख्त का बाजार भी आजकल खूब गर्म है। हिन्दुओं का बाजार इस ख्याल से बड़ा ही सुन्दर और शानदार नजर आता है। इनके यहाँ अदालतों की तरह ईश्वर के यहाँ भी वकालत, रिश्वत, नजराना बड़े जोरों के साथ चलता है। रिश्वत मुसलमान ईसाई भी देते हैं; पर हिन्दू इनसे बढ़े-चढ़े हैं। हिन्दुओं के हरामखोर धर्मनेता तादाद में बहुत—अन्य धर्मों की अपेक्षा बहुत ज्यादा हैं और मजे भी खूब उड़ाते हैं।

लेकिन विशुद्ध सत्य या सनातन सत्य तो इसे बड़ी ही घृणा की दृष्टि से देखता है और चाहता है कि मोम को मोम कहा जाय, पत्थर को पत्थर—अनर्थ अच्छा नहीं, मूर्खों के धन से जेब भरने वाले पुरोहित, पण्डे, मौलवी, आज मालामाल हैं। जो जनता कथा-कहानियों और गपोड़ों पर विश्वास करना छोड़ दे तो हरामखोरों का एक बहुत बड़ा समुदाय अपनी मौत आप ही मर जाये और जल्दी मर जाय।

एक घोर पाप राक्षस संसार का स्वामी बनाकर आकाश में बैठाल देना और फिर उसके नाम से संसार के लोगों को निर्दयता के साथ दोनों हाथों लूटना धर्म है। जो इसका भण्डाफोड़ करने उठे, उसे बड़े-बड़े उपाध्याय एम.ए. खानदानी लुटेरे कोसने को खड़े हों। इन लुटेरों और गुलाम हृदयों को स्वतंत्र विचार वाला मनुष्य सुहाता भी नहीं। यह काल्पनिक जगत् में चक्कर लगाने वाले सच्चाई को फूटी आँखों नहीं देख सकते। इसमें अपराध किसका है? सत्य का?

बीरबल आकाश दीपक के तले बैठकर खिचड़ी पकाता है, बाबा नानक इलाहाबाद में त्रिवेणी के जल से अपना करतारपुर का खेत सींचते हैं। इन्हें कोई कैसे समझाये जब समझाने वाला खुद नरक की आग में जलने से डरता हो और अज्ञात लोकस्थ मृत लोगों को भर-भर लोटे पानी पहुँचा रहा हो।

(4)

सिवा धर्म के और सारे ही विज्ञान वास्तविकता की खोज में व्यस्त और सच्चाई की तलाश के इच्छुक और सच्ची बात के भूखे देखे जाते हैं। जब कभी, जहाँ कहीं किसी व्यक्ति ने कोई सच्ची बात खोज कर निकाली कि उसका यथेष्ठ सम्मान किया गया। लेकिन धार्मिक विद्यालय में अगर किसी ने किसी साम्प्रदायिक विश्वास के विरुद्ध कोई बात कही कि वहीं उसका मुँह बन्द किया गया, या तो वह अपनी खोज को गुप्त रखे या अपनी खोज का स्वतः खण्डन करे, नहीं पदच्युत होने का अपमान झेले। श्रीमती

ऐनी बेसेण्ट सदृश पण्डिता को उनके पति ने इसलिए अपने प्रेम से वंचित किया था कि इनका मत उनके धर्म के सिद्धान्तों के प्रतिकूल पड़ा। मन की शुद्धता और सत्यता पाप है, कायरता और छल सुकृति है। स्थापित धार्मिक सिद्धान्तों के विरुद्ध कही हुई सच्ची बात मिथ्या है, जहाँ किसी ने ऐसी सच्ची बात कही कि वह अभिशाप का भागी बना। धर्मशिक्षा-भवन का हर एक अध्यापक अनृत में ही जीवन व्यतीत करता है। धर्म-विज्ञान ही एक असत्य पूर्ण ज्ञान है। इसे विज्ञान कहें या अज्ञानान्धकार? बड़े-बड़े विद्वान्, जो धर्मनेता हो गये हैं और हैं, सभी बुद्धि के शत्रु हैं। भूगर्भ, भूगोल, खगोल आदि विद्याओं के ज्ञाताओं को उनके सच्चे विचार के लिए दण्ड दिये गये, मानो वे हत्यारे और महापापी थे। सिर्फ इसलिए कि उन्होंने माने हुए धर्म-सिद्धान्तों के विरुद्ध सत्य का प्रकाश किया।

आयुर्वेदज्ञों, प्राणीशास्त्र के ज्ञाताओं, नृवंश विद्या के जानकारों और पुरातत्त्व के खोजने वालों को धर्मयाजकों ने बुरा-भला कहने से नहीं छोड़ा। फ्रांस के कुम्हार पैलिसी को जिसने चीनी के बर्त्तन बनाने की रीति खोजी, धार्मिक विचारों के कारण कैद किया। यद्यपि आज उसकी मूर्त्ति फ्रांस देश को सुशोभित कर रही है। लोकमान्य भगवान् तिलक को वेदों की आयु की खोज करने और गीता रहस्य लिखने के कारण उनके कतिपय शिष्यों तक ने उन्हें बुरा-भला कहा। यह धर्म-विज्ञान की सच्चाई, उदारता और महत्ता के छोटे-छोटे नमूने हैं। कुरान के विरुद्ध विचार प्रकट कीजिये कि मुसलिम खड्गहस्त सिर पर खड़ा मिलेगा। बाइबिल का खण्डन कीजिये कि तुरन्त पादरी समाज काटने दौड़ेगा। यही हाल हिन्दू और दूसरे धर्मों का भी है? हाँ, जुदा-जुदा धर्म वालों के क्रोध के पारे की डिगरी में तारतम्य आजकल जरूर देखने में आता है।

धर्म पुस्तकों और उसकी बातों की पड़ताल करने से प्रकट होता हैं कि सारे धर्म एक अनृत कल्पना की शाखाएँ हैं। क्योंकि उनकी गप्प कथाएँ एक दूसरे से खूब जोड़ खातीं और समता रखती हैं; पर इस बात को स्वीकार करने के लिए कोई तैयार नहीं। यदि सत्य मानने को धर्मयाजक तैयार होते तो गुरु नानक के उपर्युक्त व्यावहारिक श्राद्ध-तर्पण के खण्डन के पश्चात् यह मिथ्या प्रथा उठ जाती। पर नहीं, ज्यों-ज्यों सत्य का सूर्य ऊँचा उठता जाता है, यह बुराइयाँ दिन-दिन घटती ही चली जा रही हैं। धर्म के संरक्षक सम्भाव्य, समता और अनुमान की दुहाई देते हैं, लेकिन प्रमाण नदारद। अगर मूसा ने और बृगहम यंग ने सिनाई और ऊटा पर खुदा से बात की, तो नामदेव की प्रार्थना पर विष्णु की मूर्त्ति ने दूध पिया और भोजन किया और मुहम्मद साहब ने सातवें आसमान पर जाकर ईश्वर से साक्षात् बातें की। ललित विस्तर के अनुसार बुद्धदेव को दिग्पालों ने आकर प्याले दिये। जैन सती ने पैर छुआकर हजारों मन की जंजीर तोड़ गिराई। भला इन बातों को सिवा अन्धविश्वासियों के दूसरा कौन सज्ञान

मनुष्य सत्य मान सकता है?

कौन से धर्म ने विज्ञान की वृद्धि की है? जितनी खोज, जितने आविष्कार आज हमारे सामने हैं, इनमें से एक का भी पता धर्म पुस्तकों में होता तो नई खोज को हम खोज या आविष्कार क्यों कहते? हम तो इन्हीं नई खोजों को धर्मग्रन्थ कर्त्ताओं की बहादुरी समझकर पहले ही सन्तुष्ट हो जाते। धर्मग्रन्थों के अर्थो को प्रत्याह बदला जाता है, या उनके नये-नये अर्थ किये जाते हैं? पर इन गप्पों से परिपूर्ण गल्पों को सदा के लिए तह करके क्यों नहीं रखा जाता? इसलिए कि उनके बिना पुरोहित-मण्डल और राजवर्ग की लूट कायम नहीं रह सकती। धर्मयाजकों की कथा में जब श्रोता कम आते हैं तो वह नई शिक्षा, और विज्ञान के प्रकाश को खूब जी भरकर कोसते हैं। कभी-कभी यह निर्धनों की प्रशंसा में धरती और आकाश की सन्धि मिला देते हैं। धन, दौलत, भोग-विलास की मनमानी खबर लेते हैं। गरीबों और त्यागियों को स्वर्ग में पहुँचा देते हैं। परन्तु हजरत की नजर चढ़ावे पर ही रहती है। चढ़ावा कमती आया, दक्षिणा कम मिली कि श्रद्धा-भक्ति की कमी की दुहाई मच गई। इन पुरोहितों का न शिक्षा में विश्वास है, न मस्तिष्क की समुन्नति में भरोसा और सुख। यह तो यही चाहते हैं कि सारा संसार अन्धा बनकर दुनिया भर की गप्पों को सच मान ले और इनका उल्लू सदा के लिए सीधा बना रह जाय।

इनकी बुद्धि में पृथ्वी चक्की के पाट के सदृश है, सूर्य एक कीचड़ के गड्ढे से निकलता है और फिर वहाँ ही जाकर छिप जाता है, इत्यादि। जहाँ देखिये धर्मान्धता, अन्धविश्वास, रूढ़ियों की दासता, रीतियों-रिवाजों की गुलामी भरी पड़ी है। यह अन्धविश्वास और रूढ़िप्रियता विषधर सर्प हैं। इनके घातक विष से जाति को सच्चाई ही बचा सकती है। धर्मान्धता प्राणघातक है। एक विज्ञान-प्राण सज्जन कहते हैं। 'अब ईडन के बाग की कहानी, नेवले का सुनहरी पूँछ का किस्सा हमें सदा के लिए उठा देना पड़ेगा। आज के लिए, सर पी.सी. राय और सर जे.सी. बोस हमारे ऋषि हैं। इनके लिखे वैज्ञानिक ग्रन्थ वेद हैं, प्रकृति ही उपास्य परमात्मा है। वह समय दूर नहीं है जब धार्मिक व्याख्यानों के स्थान में सत्यवादी विद्वानों के शिक्षाप्रद भाषण होंगे, जिनसे हमें अटल सत्य का पता लगेगा। प्रकृति के गुप्त, गुह्य रहस्य हमारे हस्तगत होंगे। पुरानी निर्मूल, तर्क विरुद्ध पुस्तकों के स्थान में हमारे पुस्तकालय वैज्ञानिक खोजों की पुस्तकों से भरे होंगे। पुरोहितो! सावधान, गप्प गाथाओं को, भद्दी बेसर-पैर की रिवाजों को जल्दी मिटा दो, हँस-हँस कर मिटा दो, नहीं तो तुम्हें बहुत पछताना पड़ेगा। तुम्हारे बच्चों को इसका कुफल भोगना पड़ेगा। अज्ञान का दिन-दिन नाश हो रहा है।

आओ बान्धव, हम सत्य से प्यार करें, आत्मा की स्वतंत्रता पर कुठाराघात न करें। हम बच्चों को शिक्षा पालने से ही, माँ की पवित्र गोद से ही आरम्भ कर दें। यही

प्रारम्भिक शिक्षा का पवित्र मन्दिर है। इस शिक्षा में हम लड़की-लड़के का भेद भूल जायँ। सभी ज्ञानार्जन करने के लिए एक समान अधिकारी हैं। माता की गोद झूठ का विस्तार करने के लिए नहीं है। यह पवित्र स्थल झूठ का भण्डार न होना चाहिए। माता-पिता निस्संकोच होकर बच्चों से सदा सत्य बोलें। जो बात वे न जानते हों कह दें कि 'नहीं जानते'। झूठ गढ़कर बच्चों के दिल और दिमाग में झूठ के पौधे का समारोपण बड़ा दोष है। हर बच्चे को अधिकार होना चाहिए कि वह जो चाहे पूछे, शंका करे, सन्देह करे, किसी बात के लिए ठीक हेतु माँगे। जिस बात को हम सिद्ध करके नहीं बतला सकते उसे व्यर्थ सत्य कह कर बच्चों के सिर में ठूँसते रहना मानव जाति का घोर अकल्याण करना है।

हममें से प्रत्येक का कर्त्तव्य है कि झूठ से बचे, किसी की भी बात को बिना जाँचे-पड़ताले बिना छानबीन के सत्य न मान बैठें। शिक्षा का अभिप्राय है मनुष्य-बुद्धि विकसित करना, उसके मस्तिष्क को इतना बलवान और अन्वेषक बनाना कि वह अपनी खोज में संसार को लाभ पहुँचा सके। प्राकृत सत्य का प्रकाश ही मनुष्य का ध्येय है, यही सनातन सत्य है। हम सब इस सत्य की खोज में लगें। क्योंकि—सत्यं धर्म सनातनः।

('मतवाला', 28 अप्रैल 1928, 'प्रत्यक्षवादी' छद्मनाम से)

धर्म और ईश्वर

हम देखते हैं कि मनुष्य भी पशु ही है, किन्तु वह अन्य पशुओं से बहुत ऊँचा है। वह ऐसी परिस्थिति को पहुँच गया है कि पशु-जीवन से भिन्न नजर आता है, इसलिए हम उसे पशु नहीं कहते। इसका कारण उसका विकास और उत्कर्ष है। हम सोचते हैं तो हमें उसके विकास के दो कारण प्रतीत होते हैं। पहली उसको उठाने वाली बात शक्ति और ज्ञान है, जिन्हें प्राप्त करके वह धीरे-धीरे प्रकृति के वश से निकल कर, उस पर प्रभुत्व करने की ओर अग्रसर होता जा रहा है। वह मनुष्यजाति की आवश्यक सुख और सुविधाजनक चीजों को प्रकृति से छीन कर, अपने सजातियों में प्रसारित करता या बाँटता है। वह समझ गया है कि उसके पारस्परिक सम्बन्ध, बिना प्रकृति से प्राप्त पदार्थ के जैसा चाहिए, वैसा आराम नहीं दे सकते। मनुष्य स्वयं प्रकृतिजन्य सम्पत्ति है, क्योंकि वह बुद्धि और शरीर से काम करता है और अपनी जाति को नष्ट न होने देने के उद्देश्य से उसकी अभिवृद्धि करता रहता है, इसमें उसे दूसरे के सहयोग की आवश्यकता होती है।

फिर यह भी देखा जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति मानवी उन्नति और उत्कर्ष का किंवा संस्कृति का सहज शत्रु भी होता है। एक ओर तो वह दूसरे प्राणियों की तरह अकेला नहीं रह सकता; एकान्तवास उसे असह्य दण्ड प्रतीत होने लगता है, दूसरी ओर सामाजिकता के लिए जिस त्याग की नितान्त आवश्यकता है; जिसके बिना सामाजिक जीवन असम्भव है, उससे जी चुराता है। इसलिए व्यक्तियों की अयौक्तिक और व्याघातक बातों से मनुष्य को संस्कृति की रक्षा करनी अवश्यम्भावी हो जाती है। सामाजिकता और वैयक्तिक स्वार्थ तत्परता दोनों युगपत् चल नहीं सकतीं; एक दूसरे की बाधक हैं। इसलिए समाज में नियमों, प्रतिबन्धों और शृंखला की जरूरत होती है। बिना इसके न पदार्थ ठीक-ठीक उत्पन्न हो सकते हैं, न समाज में वितरण हो सकते हैं। जो कला और विज्ञान हमें समुन्नत और सुखी बनाता है, वही हमारा सर्वनाश भी कर सकता है।

इस विचार से जब समाज में निरंकुशता और नृशंसता की रोक-थाम करने के

लिए थोड़े से वैज्ञानिक, कलाकुशल और बलशाली लोग शासन-दण्ड धारण करते हैं तो वह बहुसंख्यक प्रजा को धीरे-धीरे पीसने लगते हैं। स्पष्ट है कि यह दोष उन्नति और उत्कर्ष या दोनों के योग और संस्कृति में, स्वाभाविक नहीं होते। संस्कृति और समाज के निर्माण में ही कमी रहती है। हमें देखना है कि वह कमी क्या है? निःसन्देह मनुष्य ने बहुत अच्छी और प्रशस्त उन्नति की है, क़रता जा रहा है और करता रहेगा। उसने प्रकृति को जीता है और अभी और अच्छी तरह से उस पर विजय प्राप्त करेगा। लेकिन उसने अपने समाज के प्रबन्ध में उतनी उन्नति नहीं की कि जिससे लोगों की आपत्तियाँ और शंकाएँ बढ़ने के बदले कम होतीं। हम ख्याल कर सकते हैं कि मनुष्यों के सामाजिक या पारस्परिक सम्बन्ध ऐसे होने सम्भव हैं, जिनसे मनुष्य की सहज भावनाओं को कुचलना और दबाना बन्द करके हम उन निमित्तों को ही मिटा दें, जिनसे संस्कृति के प्रति लोगों में असन्तोष पैदा होता है। इससे भीतरी खींच-तान मिट कर, आदमी प्रकृति के पदार्थों की प्राप्ति में लग जायेंगे और उनका शान्तिपूर्वक उपभोग करेंगे। सारांश यह कि मनुष्य जाति के भीतर से समाज के विरोध का भाव एकदम मिटा देना ही सर्वोपरि अभीष्ट है। अब यह एक मनोवैज्ञानिक प्रश्न बन जाता है, अतः दृश्य जगत् के नैसर्गिक प्रश्न के साथ-साथ मनोवृत्ति का प्रश्न भी उपस्थित हो जाता है। अगर हम किसी प्रकार जनता की बड़ी संख्या को कला-कुशल और वैज्ञानिक बना दें और उसका शासन थोड़े से जात-मूढ़ों और नादानों पर रहे, तो यह संस्कृति के भीतर घुसा हुआ दोष क्रमशः दूर हो सकता है।

लोग कहते हैं, मनुष्य स्वभाव से ही आलसी और कामचोर होता है, लेकिन प्रत्यक्षवादी इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं हैं। वास्तव में समाज की संस्कृति के दोष से ऐसा दिखाई पड़ता है। वैयक्तिक सम्पत्ति और सोने-चाँदी सदृश रद्दी पदार्थों को अन्न-वस्त्र से अधिक प्रतिष्ठा देना अगर समाज से हट जाय, तो मनुष्यों में से बहुत बड़ी सीमा तक ईर्ष्या, कटुता, विषमता और प्रतिद्वन्द्विता आदि मिट सकती है। एक नई पीढ़ी युक्ति, तर्क और विशुद्ध ज्ञान के आधार पर प्रेम पूर्वक शिक्षित और दीक्षित की जाय, जिसे संस्कृति के मधुर फलों के सिवा कटुता का अनुभव न करना पड़े; तो वह निस्सन्देह समाज और संस्कृति का कोई दूसरा ही भाव (सद्भाव) रखने वाली जनता होगी। इसमें त्याग और सच्ची सामाजिकता का स्वयं आविर्भाव होगा। ये लोग सताना और दबाना छोड़कर हमारे वर्त्तमान् शासकों और नेताओं से कहीं भिन्न स्वभाव वाले सच्चे मनुष्य बनेंगे।

ऐसा होने को असम्भव समझ कर बैठे रहना, सहल इनकारी के सिवा और सहज कुछ नहीं कहा जा सकता। इस प्रश्न के कई पहलू हैं, हम यहाँ पर साम्पत्तिक और मानसिक पहलुओं को ध्यान में रखकर, कुछ जानने योग्य बातें लिखना चाहते हैं। जब

हमें मालूम हो गया कि प्रत्येक संस्कृति का आधार अनिवार्य श्रम और सहज समझ अनुमोदित त्याग है, तब उसका यह अनिवार्य फल भी होगा कि जिन पर इसका बोझ पड़े वे विरोधी हो उठें। अब स्पष्ट हो गया कि पदार्थ, उनके प्राप्ति के साधन और उनको समाज में वितरण करने के प्रबन्ध मात्र संस्कृति के आवश्यक लक्षण नहीं हो सकते, क्योंकि संस्कृति के अन्दर ही बगावत और विध्वंसक वासनाएँ प्रस्तुत मिलेंगी। इनको दबा कर संस्कृति की रक्षा के लिए कुछ बल के प्रयोग की जरूरत होगी, साथ ही विरोधियों को उनका सुखद बदला दिखला कर, राजी करना पड़ेगा। यह संस्कृति का मानसिक अंग या स्थान है।

परन्तु इतना करने पर भी मनुष्य की उद्दण्डता एकदम मिटती नहीं दीखती. हत्या, मार-पीट, व्यभिचार आदि किस देश या समाज की संस्कृति में नहीं है? और इन अनेक विषयों पर विभिन्न संस्कृतियों में मतभेद भी है। बहुत सी बातें ऐसी मिलती हैं जो संस्कृति-विरुद्ध और समाज से वर्जित होती हुई भी एकदम मिट नहीं सकीं, कई बातें तो मिटी नहीं या बहुत कम मिटी हैं। यद्यपि मनुष्य की बुद्धि और मन ने प्राचीन काल की अपेक्षा अब बहुत उन्नति कर ली है, फिर भी उसकी पशु-बुद्धि आज तक उसमें ज्यों की त्यों और जहाँ की तहाँ बनी है। बहुत बातों के लिए मनुष्यों को अब बाहरी दण्ड-विधान की जरूरत नहीं रही, उनके भीतर ऐसे भाव घुस गये हैं कि वे बहुत कुछ स्वतः समझ-बूझ कर रहते हैं। लेकिन पशुता का नितान्त उन्मूलन असम्भव बना हुआ है।

मनुष्य-समाज में इसी संस्कृति की रक्षा के उपायों का नाम नीति रखा गया है। इसी से भले-बुरे का भेद अपनी-अपनी समझ के अनुसार प्रत्येक संस्कृति-संस्थापकों ने रखा है और उसमें समय-समय पर परिवर्तन भी होता रहता है; क्योंकि मनुष्य का ज्ञान और उसका अनुभव उत्तरोत्तर बढ़ते जाते हैं! इस नीतिमत्ता की स्थापना और स्थिरता का सबसे बड़ा कारण यह है कि उसे दूसरे की सहायता की जरूरत पड़ा करती है। उसने प्रकृति को एक सीमा तक जीता है, परन्तु उसे पूरा-पूरा वश में करना मानवी शक्ति के बाहर है। जल, वायु, अग्नि आदि कभी-कभी हमारी सारी चतुरता को चुटकी में उड़ा देते है। भूकम्प धरती को उलट सकता है; जल की बाढ़ हमें जल-समाधि दे सकती है; आग, क्षणभर में दूर-दूर तक प्रलय का दृश्य दिखा सकती है; बीमारी सबको या अधिकांश को एक साथ नष्ट कर सकती है। इन अवस्थाओं में हम पारस्परिक विरोध भूल जाते हैं, हममें दया का भाव उदय होता है। इसी प्रकार हमें अनेक कामों में दूसरे के हाथ-पैरों और बुद्धि की सहायता अनिवार्य होती है, इसलिए हममें सहयोग-बुद्धि का उदय होता हैं। सहयोग के भाव को स्थिर रखने के लिए और एक-दूसरे के प्रेम की हममें जो स्वाभाविक बातें हैं, उन सबकी रक्षा के लिए जो जरूरी

नियम अनुभव से स्थिर हो जाते हैं, वही नीति है। यह सब मन से सम्बन्ध रखने वाले व्यापार हैं। इन्हीं मानसिक विचारों में धर्म और ईश्वर की कल्पना उत्पन्न हो उठती है।

अब हम देखते हैं कि धर्म का उपयोग क्या है। जब संस्कृति, जो दबाव हम पर डालती है और जिस सहज त्याग को वह हमसे चाहती है, उसी कारण उसका विरोध होता है, तो हम इन बाधाओं को मनुष्य के जीवन-मार्ग से हटा क्यों न दें, मान लें कि ये बाधाएँ हटा दी गईं। इस दशा में हम यही देखेंगे कि जो जिसका जी चाहता है, करता है। कोई पुरुष प्रतिबन्ध-हीनता से अपनी कामवासना की परितुष्टि के लिए चाहे जिस स्त्री को पसन्द करके व्यवहार में लावेगा, इसी तरह स्त्री भी करेगी। हर एक अपने प्रतिस्पर्धी को बिना रोक-टोक पीट सकेगा या जान से मार सकेगा। लूट-खसोट, छीना-झपटी जैसी पशुओं में देखी जाती है, मनुष्य में भी दीखेगी। यह निरंकुश जीवन कितना सुन्दर होगा? प्रत्येक आदमी को स्वेच्छाचार की इच्छा होगी, जैसा एक दूसरे के साथ व्यवहार करेगा, वैसा ही दूसरा भी उसके साथ करेगा। इस तरह के समाज में वही एक आदमी सारे सुखों के साधन का स्वामी बन जायेगा। जिसमें शक्ति है, जिसके हाथ में सब पर अत्याचार करने का साधन और बल है। दूसरे देशों को जीतना और दूसरा क्या अर्थ रख सकता है।

लेकिन बात धीरे-धीरे उसको भी खलने लगेगी, जो संस्कृति को मिटाने का पक्षपाती था, क्योंकि अव्यवस्था से हम अपनी प्राचीनतम प्रकृत अवस्था पर पहुँच जायेंगे। इसमें सन्देह नहीं, कि प्रकृति हमारी सहज समझ के अनुसार किये कामों में प्रकट में कोई बाधा नहीं देती, परन्तु वह परोक्ष रूप से अवश्य बाधक होती है और हमें बड़ी बेदर्दी के साथ मिटा कर छोड़ती है। इसीलिए हम संघ रूप में संगठित होकर रहते हैं और एक संस्कृति उत्पन्न कर लेते हैं। इसी के सहारे सारा जीवन सम्भव होता है। संस्कृति का यह प्रधान काम है कि हमारी रक्षा करें। प्राकृतिक अवस्था में रहने से हमें जो कष्ट होते हैं, उनसे सम्मिलित उत्कर्ष और सभ्यता के महत्त्व का पता चलता है। हमें मनुष्य जाति को सुरक्षित रखने की चिन्ता पैदा होती है और साधन समझते हैं।

जिस तरह छोटा लड़का विवशता और पराधीनता की दशा में पिता-माता से डरता है और उनकी दया पर ही उसका जीवन निर्भर होता है, इसलिए वह पिता-माता की बहुत प्रतिष्ठा भी करता है और उन्हें नाराज नहीं करना चाहता। इसी तरह प्रकृति से विवश होकर पहले के कम उन्नत मनुष्य, उसके अत्याचारों से डर कर, उसे पूजने लगे। जल, वायु, अग्नि प्रभृति मनुष्य के उपास्य देव हुए। इन देवताओं का काम हुआ प्रकृति के भय को दूर करना। निसर्ग की निर्दयता के समान सांत्वना देना, सन्तोष सिखाना

और मनुष्य पर जो कष्ट समाजिक संस्कृति की अधीनता से हो जायें, उनको हटाना। इस अभिप्राय से मनुष्य ने अपने कल्पित देवताओं को प्रकृति का स्वामी माना।

जब हमने देखा कि देवताओं से हमारे कष्ट दूर नहीं किये जा सकते, तब ध्यान होने लगा कि भवितव्यता भी कोई चीज है, जिसका दर्जा देवताओं से भी ऊँचा है, देवता लोग भी भवितव्यता के अधीन रहते हैं। फिर धीरे-धीरे संस्कृति-सम्बन्धी नियमों को भी दैवी विभूति मानने लगते हैं और उनका दर्जा मनुष्य समाज से भी ऊँचा बना देते हैं और नियमों को प्रकृति का भी अधिकारी मान बैठते हैं।

इस तरह मनुष्य की विवशता ऐसे-ऐसे मनोरंजक काल्पनिक, सुख-शान्तिपरक विचार का ढेर कर देती है और लोग समझने लगते हैं कि अब हम इनके द्वारा प्रकृति और भाग्य के अत्याचारों से बचेंगे और हमें सामाजिक बुराइयों से भी त्राण मिलेगा।

लोग कहने लगते हैं, जीवन का उद्देश्य बहुत ऊँचा है। इसमे सन्देह नहीं कि उस ऊँचे उद्देश्य की हम कल्पना भी नहीं कर सकते, हाँ यह अवश्य मान लेते हैं कि इससे मानव-जीवन दोषरहित, सर्वांगपूर्ण हो जाता है। इसी प्रकार धीरे-धीरे मनुष्य जीवात्मा को शरीर से अलग कर लेता है और उसी को इस महत् और उच्च स्थान का अधिकारी जान लेता है। उसे खयाल होता रहता है कि इस संसार में जो कुछ भी हो रहा है, या होना है, वह हमसे कहीं अधिक किसी बुद्धि का किया हुआ काम है। वह सर्वांगपूर्ण निर्दोष बुद्धि जो मनुष्य की बुद्धि से बहुत उच्च स्थानीय है, जो करती है, सब हमारे हित के लिए ही करती है। एक बड़ी भारी सहृदय-शक्ति, जो देखने में कठोर है, सबकी निरीक्षिका और नियंत्री है। वह हमें प्राकृत शक्तियों की क्रूरता की वेदी पर बलि नहीं होने देगी, हमारी रक्षा करेगी। हम समझने लगते हैं कि मृत्यु से हम मिट नहीं जाते, किन्तु हमको नए प्रकार का कोई जीवन प्राप्त होता है और हम अधिक उन्नति के पथ पर अग्रसर होते जाते हैं। हमारे सामाजिक और नैतिक नियम, जिनसे संस्कृति बनती है, वे भी सारे विश्व पर शासन करते हैं। सामंजस्य के साथ सर्वोच्च न्याय से स्थिर रखे जाते हैं, परिपुष्टि पाते रहते हैं। इस तरह हर भलाई का पुरस्कार मिलता है और हर बुराई के लिए दण्ड। यदि यह पुरस्कार या दण्ड इस जीवन में नहीं मिलता तो क्या मरने के पश्चात के जीवन में मिलेगा। इस प्रकार मनुष्य-जीवन के सारे भय, कष्ट और दुःख अवश्य ही मिट जाने वाले हैं। उस अदृश जीवन में उन सारी कमियों की पूर्ति हो जायेगी, जो हम यहाँ पूरी नहीं कर सके, वह सारे सुख हमें मिलेंगे, जिनसे हम आज वंचित हैं। यह दैवी जीवों के गुण हैं, दैवी नियमों के महत्त्व हैं, इसी में सारे देवताओं को घनीभूत करके रख दिया गया है। जिन जातियों ने इस अनोखी बात को सोच कर गढ़ा, वह अपनी इस उन्नति के लिए बड़ा अभिमान करती हैं।

यह धार्मिक भाव निस्सन्देह बहुत काल में समुन्नत होते-होते यहाँ तक पहुँचे

और इन्हें जुदा-जुदा देशों की विभिन्न संस्कृतियों ने विभिन्न रूपों में माना है। आज यही धर्म सभ्यता का सर्वोत्तम रत्न समझा जाता है। इससे हमारे सारे ऐहिक और पारमार्थिक अभावों और अभियोगों की पूर्त्ति होती है। जो आदमी इसका विरोध करता है, उसका जीवन समाज को असह्य हो जाता है, कितने ही अन्धविश्वासी मूर्खों ने इस मतभेद के कारण अपने विरोधी को जान से मार डाला।

यहाँ यह शंका की जाती है कि तुम्हारी यह बात हमारी समझ में नहीं आती कि 'संस्कृति धार्मिक भावों को पैदा करके उन्हें अपने परिकर में फैलाती है।' यह बात उतनी विस्पष्ट और प्राकृतिक नहीं प्रतीत होती, जितना यह कहना कि संस्कृति ने ही श्रम के फल को सब लोगों तक पहुँचाने के नियम बनाये ओर स्त्री-बच्चों पर अधिकार स्थापित किया।

ऐसी शंका अनुचित नहीं कही जा सकती। प्रकट में तो यही जान पड़ता है कि धार्मिक भाव भी उसी आवश्यकता से प्रादुर्भूत हुआ, जैसे संस्कृति के और दूसरे फल हमें मिले। इसका भी अभिप्राय प्रकृति के घातक प्रभुत्व से संस्कृति की रक्षा करना है। दूसरा अभीष्ट यह है कि इसके (धर्म के) द्वारा संस्कृति की त्रुटियों को मिटाया जाय। संस्कृति ही अपने अनुकूल एक धर्म की कल्पना कराने का कारण होती है। धर्म में भी मनुष्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसी तरह दीक्षित होता रहता है, जैसे गणित-विद्या में। अन्तर यही होता है कि गणित आदि सच्चे और प्रत्यक्ष विज्ञान हैं और धर्म की परोक्ष कल्पना ही ईश्वर के नाम पर ईश्वरीय ज्ञान कह कर सामने देखी जाती है। ईश्वरीय-कल्पनाजनित-धर्म अपनी ऐतिहासिक व्युत्पत्ति और क्रमशः विकास उत्कर्ष का कोई पता नहीं देता, जिस पर तर्क और दूसरे विज्ञान को विश्वास हो सके। इसका भी कोई कारण नहीं मिलता कि जुदा-जुदा युगों और विभिन्न संस्कृतियों में यह अलग-अलग क्यों हैं, एक सा धर्म सर्वत्र क्यों नहीं है? अनुधावन से अनुमान होता है कि मनुष्य जाति ने अपनी बाल्यकालीन अज्ञानावस्था में जो कुछ प्राकृत दृश्य देखे, उन्हें यही समझा कि यह मेरे सदृश किसी मनुष्य के ही कृत्य हैं। यही उस व्यक्ति के मान लेने का कारण हुआ—लेकिन यह कारण स्वयं सिद्ध नहीं है; फिर भी मनुष्य ने इससे सन्तोष प्राप्त किया। इसीलिए हमारे यहाँ के अनेक सरल हृदय विद्वान भी फ्रांसींसी विद्वान वाल्टेयर की तरह कहते है कि धर्म और ईश्वर से समाज को बड़ा लाभ हुआ और होता है; इसे अक्षुण्ण बना रहने देना चाहिए।

सच तो यह है कि जब मनुष्य प्रकृति के बल (force) को विभिन्न रूप में देख कर उनको पृथक्-पृथक् व्यक्ति समझ लेता है, तो यह उसकी बाल्यावस्था की सी नादानी ही है। जिस तरह बालक एक खिलौने को लेकर फिर उसे नहीं छोड़ता—जो छुड़ाता है उससे नाराज होता है, उसी तरह धर्म और ईश्वर के सम्बन्ध में विचारहीन

लोगों का हाल है। हमें कोई भी विश्वास के लायक ऐसी बात नहीं मिलती, जिसके आधार पर इन निराधार कल्पनाओं पर विश्वास कर लें और उन्हें विज्ञान का स्थान दें। बालकों को नाना प्रकार के नामों से भय दिखलाया जाता है, बाबा जी और हौवा हमारे प्रान्त के लोगों में बहुत प्रचलित हैं। बच्चा इन्हें सच्चा व्यक्ति समझ कर डर जाता है, किन्तु बड़े होने पर वह समझता है कि यह कल्पना-मात्र थी, वास्तव में कुछ न था। इसी प्रकार मनुष्य जाति की अवस्था और ज्ञान ज्यों-ज्यों परिपक्व होते जाते हैं, त्यों-त्यों वह दैवी शक्ति की कल्पना को अच्छी तरह धीरे-धीरे समझता जाता है।

प्रकट है कि धर्म कुछ सिद्धान्त-समुच्चय का नाम है, कुछ ऐसी घटनाओं और आन्तरिक या बाह्य (भीतरी या बाहरी) वास्तविकता का कथन मात्र है, जिनसे हमें ऐसी-ऐसी बातें मिलती हैं, जो कभी हमारे अनुभव में नहीं आईं। फिर वह बातें इसलिए कही जाती हैं कि हम उन पर विश्वास करें। बातें भी ऐसी होती हैं जिनको हम हितकारी और लाभदायिनी समझने लग जाते हैं; इसलिए बिना तर्क और खोज के उन्हें मान लेते हैं। इन तर्क, युक्ति और प्रमाणहीन बातों को जो बहुत सी जान लेता है, विद्या और बुद्धि का भण्डार माना जाता है और जो नहीं जानता वह मूर्ख है। दूध-दही के समुद्र, अमृत और मद्य की नहरें, स्वर्ग के विविध भोग, हमारे भौगोलिक ज्ञान पर पानी फेरने को तैयार रहते हैं। फिर भी हमारे मूर्ख भाई ही नहीं, बड़े-बड़े पढ़े-लिखे, कभी-कभी स्वार्थवश और कभी अविचार से उन्हीं बातों की परिपुष्टि करते रहते हैं, जिनके त्यागने में ही मनुष्य जाति का कल्याण है। कहा यह जाता है कि हम जो कुछ धर्म और ईश्वर की बावत कह रहे हैं, संसार के विद्वानों के बहुकालव्यापी अनुभव और विचार का फल है। ठीक है, लेकिन क्या इनका कोई युक्तियुक्त, तर्कानुकूल, वर्त्तमान् अनुभव-अनुमोदित प्रमाण भी है? इसका उत्तर हमें नहीं मिलता।

जब हम पूछते हैं कि आपका धर्म-सम्बन्धी ज्ञान किस आधार पर है, तो उत्तर मिलता है कि पहले तो वह विश्वास करने के योग्य है, क्योंकि हमारे बाप-दादे आदिकाल से ही उसे मानते और उस पर विश्वास करते आये हैं। दूसरे, हमारे पास पुस्तकीय प्रमाण है, जो बहुत प्राचीन समय से हमारे पास चले आते हैं। तीसरे यह कि धर्म और ईश्वर के मामले में शंका करना मना है, बहुत बुरा है। अब पाठक स्वयं देख लें कि पहली और तीसरी बातें इतनी वाहियात हैं कि कोई भी सज्ञान प्राणी इनको सुनकर हँसे बिना नहीं रह सकता। दूसरी बात पुस्तकों या शब्द प्रमाण वाली रहती है। इसका भी कोई प्रमाण मान्य नहीं हो सकता, जबतक यह न सिद्ध कर दिया जाये कि यह पुस्तकें ऐतिहासिक प्रमाण कहलाने और मानने के योग्य हैं। ऐतिहासिक प्रमाण किसे कहते हैं, इसको जानने के लिए विद्वानों ने बड़ी-बड़ी पुस्तकें महत्त्वपूर्ण विचार के साथ लिखीं हैं और हमारी प्रज्ञा उन कसौटियों को, जो इन पुस्तकों में है,

ग्रहण भी करती है। हमें संसार की धार्मिक पुस्तकों में से कोई भी ऐसी नहीं मिली—जिसे हम ऐतिहासिक प्रामाणिकता की सनद दे सकें।

फिर यह कहना कि धर्म में शंका करना ही उचित नहीं है, धर्म की सारी पोल खोल देता है। हमें तो सत्य ग्रहण और असत्य के परित्याग को हमेशा तैयार रहना चाहिए। यही मानवीय ज्ञान का महत्त्व है। यह कहना मूर्खता है कि अमुक पुस्तक में स्वयं ईश्वर या अल्लाह ने अमुक बात लिखी है, इसे मान लो। कोई-कोई आदमी कह देते हैं कि 'ईश्वर और धर्म का मर्म हमारे मन और मेधा के बाहर की बात है।' इसके उत्तर में सिवा इसके और क्या कह सकते हैं कि 'तब तो यह विषय पागलखाने के लोग ही ठीक समझ सकते हैं।' धर्मान्ध लोगों ने धर्म के नाम पर बड़े-बड़े अत्याचार उन सत्यवादियों पर किये हैं, जिन्होंने उनकी तर्कहीन कल्पनाओं को सत्य मानने से इनकार किया। हमारे पास योरोप, अरब और भारत के धार्मिक लोगों के अत्याचार के ऐतिहासिक प्रमाण प्रस्तुत हैं और आज भी धर्म के नाम पर की जाने वाली नर-हत्याओं को आँखों देखने वाले साक्षी हैं। अतः हमारा विश्वास ईश्वर और धर्म की निर्मूलता पर और भी दृढ़ हो जाता है। पुनः हम धर्म के निर्दिष्ट मतों, मूल सूत्रों या सिद्धान्तों पर केवल विवेक-दृष्टि से विचार करते हैं तो भी कहना पड़ता है कि धर्म के सारे के सारे सिद्धान्त भ्रम-मूलक हैं। उनका प्रमाण नहीं मिलता, इसलिए उनके सत्य मान लेने के लिए कोई बाध्य नहीं हो सकता, न किसी को विश्वास करने के लिए दबाया जा सकता है। कोई-कोई तो इतने असम्भवनीय और संसार की उन सच्चाइयों से दूर है, जिसे मनुष्य ने बड़े श्रम से ढूँढ़ा और समझा है। उनमें से बहुतों की सच्चाई के मूल्य का निर्णय हो ही नहीं सकता, न हम उन्हें सत्य सिद्ध कर सकते हैं। उनका खण्डन करके असत्य प्रतिपादित कर सकते हैं। संसार की पहेली को हम धीरे-धीरे खोज करते-करते जानते जाते हैं, लेकिन बहुत बातें ऐसी हैं जिनका स्पष्ट उत्तर देना विज्ञान के बल के बाहर है। लेकिन वैज्ञानिक क्रिया ही एकमात्र साधन हमारे पास है, जिससे हम बाह्य सत्य का ज्ञान पा सकते हैं। यह आशा करना भी भ्रम है कि हमें स्वानुभूति से, योग की समाधि से कुछ मालूम हो सकता है। इनसे सिवा विशिष्ट अवस्था के और कुछ नहीं जान पड़ता, इस प्रकार के विशिष्ट भावों का व्यक्त करके बताना भी दुस्साध्य होता है। धार्मिक सिद्धान्तों से हमारे मानसिक जीवन की भी कोई विश्वस्त बात नहीं मिलती। किसी बात का कोई जवाब उपनिषदें देती हैं, वह घोर तिमिराच्छादित शब्दों में। इनके स्पष्टीकरण में लोग अपनी टाँग अड़ा देते हैं, यह सर्वथा अनुचित है।

हमारे प्रतिपक्षी यह शंका कर सकते हैं कि जब तुम धार्मिक अनेक सिद्धान्तों का यथावत् खण्डन नहीं कर सकते और संसार का विज्ञान-बल अभी तक कच्चा ही है, तो फिर हम उन पर विश्वास क्यों न कर लें क्योंकि जनश्रुति, परम्परागत दन्तकथा

और बहुत बड़ा लोकमत और बहुकालव्यापी मनुष्य जाति के ज्ञान का भण्डार और धर्मजनित सन्तोष हमारे पक्ष में है। हमें अधिकार है कि हम ऐसी बातों का आँख बन्द करके विश्वास कर लें अथवा बिल्कुल विश्वास न करें। हम तो इतना ही कहेंगे कि आप अपने को धोखे में डालकर, यह न समझ बैठें कि आपका यह तर्क आपको विशुद्ध निर्णय की ओर ले जा रहा है। अज्ञान, अज्ञान ही है, उसे किसी बात को मान लेने या विश्वास करने का अधिकार नहीं होता, यही कह सकते हैं कि यह बात अभी तक अनिश्चित है।

हमने देखा है कि लोग धर्म को नहीं मानते, पर अपने आपको और दूसरों को धोखा देते रहते हैं कि हम धर्म के बड़े पक्के मानने वाले हैं। धर्म के मामले में हम मुक्तकण्ठ से कह सकते हैं कि लोग बड़े ही कपटी, कुटिल और चतुराई से अनाचार करने वाले होते हैं। बड़े-बड़े पण्डित या दर्शनज्ञ शब्दों और वाक्यों का मनमाना अर्थ खींच-तान कर लगा लेते हैं। यहाँ तक कि मूल का नामोनिशान तक बाकी नहीं रहता। ईश्वर का ऐसा अनिश्चित कल्पित अर्थ कर देते हैं, जो बुद्धि के बाहर होता है और ईश्वर-भक्त बन बैठते हैं। बहुतों को हमने द्रव्यगत गति शक्ति को ही ईश्वर कहते पाया है। यद्यपि इन कई कल्पनाओं से उस सर्वशक्तिमान् दयालु, न्यायकारी ईश्वर का पता ही नहीं रहता, जिसकी धर्मों ने कल्पना की है। जो मनुष्य इस बहुत बड़े अज्ञेय विश्व में अपने को तुच्छ और सर्वथा निर्बल समझता है उसे लोग बड़ा धार्मिक मानते हैं, किन्तु यह तो धर्म के भाव के विधायक लक्षण नहीं हैं। धर्म तो वह है जो इसके विरुद्ध होकर इस भाव को हटाने का इलाज ढूँढ़े। क्योंकि सर्वशक्तिमान् ईश्वर तो सब जानता है। अच्छा उपासक धर्म के बल से इस अज्ञान को हटा सकता है, अगर वह ऐसा नहीं करता तो वह स्वयं ईश्वर का इनकारी है। यह तो नास्तिक भी कहता है कि मैंने प्रकृति के सारे भेद नहीं जान पाए और इस महान् विश्व में एक अकिंचन प्राणी हूँ। बात वास्तव में यह है कि ईश्वर और धर्म की कल्पना प्राचीन काल के कम ज्ञान वाले लोगों ने भय और अज्ञान के कारण की है। अपने लिए एक मिथ्या अवलम्ब स्थापित किया है और बाद में स्वार्थी लोगों ने अपना मतलब गाँठने के लिए उसे खूब दृढ़ किया और रंगा।

इन बातों को सुनकर हमारे बहुत से भोले भाई कह उठते हैं कि अगर धर्म और ईश्वर भ्रम है, तो आपकी और भी सामाजिक, नैतिक बातें भी भ्रमात्मक हैं। लेकिन यह अगर वह क्रोध में कहते हैं तो हमारे पास कोई उत्तर नहीं है। अगर वह यह बात सच्चे मन से कहते हैं तो हमारा उत्तर सीधा और सरल है।

जिन बातों की सच्चाई को हम तर्क की कसौटियों द्वारा जाँच कर सकते हैं, अपने प्रत्यक्ष अनुभव से कार्य के फल को देखकर जान सकते हैं, उनमें और निराधार

मन-कल्पित धर्म में बड़ा अन्तर है। हमें मनुष्यों की रक्षा के लिए या अपने ही देश की जनता की रक्षा के लिए संस्कृति की रक्षा की जरूरत है। समयानुसार इस संस्कृति में हेर-फेर भी होता रहता है, यहाँ कोई बात आँख बन्द करके मान लेने की नहीं होती, न तर्क-वितर्क या विरोध-समर्थन की रोक-थाम है। इसलिए हम संस्कृति को धर्म की तरह भ्रममूलक नहीं मान सकते।

अगर यह कहा जाये कि धर्म के सिद्धान्तों और परमात्मा के न्याय और सर्वशक्तिमत्ता में संसार के अधिकांश लोगों का आत्मविश्वास है, इसके हट जाने से लोग असामाजिकता के भावों से भर जायेंगे, निडर और निस्संकोच होकर मनमानी करने लग पड़ेंगे, तो सारा समाज खण्ड-बण्ड हो जायेगा। हजारों वर्ष की बनी संस्था के टूट जाने से अऩेक खरा़बियाँ फैलेंगी, और सारी सभ्यता नष्ट हो जायेगी; इसलि़ए अगर यह मालूम भी हो जाये कि धर्म में सच्चाई नहीं है, तो भी हमें यह बात दिल में ही रखनी चाहिए। धर्म और ईश्वर को हटा कर तुम जनता की शान्ति और सन्तोष के लिए उन्हें दूसरी कौन सी चीज दे सकते हो?

हमारा तो यह ख्याल है कि मिथ्या ईश्वर और धर्म की संस्थापना के लाभ के बदले हानि ही होती है। हमसे पहले भी बहुत लोगों ने इस विषय पर लिखा है, किन्तु उससे कहीं की भी संस्कृति का मटियामेट नहीं हुआ। इस युग में अज्ञान का पर्दा फटने लगा है, लोग धर्म और ईश्वर का निर्मूल और भ्रमात्मक होना समझने लगे हैं। जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, पहले समय में, न अब, कोई इन पर पूरा विश्वास रखता है। लाखों या हजारों वर्ष से कल्पित धर्म और ईश्वर के बनावटी भय ने संसार पर शासन किया, उससे जो कुछ लाभ या हानि होनी थी, हो ली। अब तो हम देखते हैं कि मनुष्यों की बड़ी संख्या इस संस्कृति से, जो धर्म के आधार पर है, दुखी हो रही है और इस असह्य भार को अपने सर पर से उतार कर फेंक देना चाहती है। ये लोग अब अपनी सहज समझ के ऊपर बन्धन रखना नापसन्द करते हैं और इस संस्कृति से सम्बन्ध-विच्छेद करना चाहते हैं। हम़ारे विरोधी कह सकते हैं कि विज्ञान-विज्ञान की पुकार से और विज्ञान की क्रमशः अग्रसरता से समाज की यह दशा हुई जो बहुत शोकजनक है। लेकिन हम तो देखते हैं कि जब धर्म का पूरा आतंक था, जब धर्म-याजक ही शासन करते थे, तब लोग अधिक दुखी थे, आजकल धर्म का फन्दा ढीला पड़ने से लोग खुले में साँस लेने लगे हैं और अपने को सौभाग्यशाली समझते हैं। पुरोहित लोग भी संसार की प्रगति देखकर धर्म के ढकोसले की कड़ाई को ढीला करने पर मजबूर हो गये हैं। इसके प्रमाण हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि सभी धर्मों में पाए जाते हैं। हमने यहाँ उदाहरणों से अपने छोटे से लेख को बढ़ाना उचित नहीं समझा। प्रायश्चित, कफ्फारा और पीनेन्स का अर्थ ही है बन्धन का ढीला करना या

मूर्खों से माल ऐंठना। कुछ भी हो, पर धर्म का बन्धन ढीला जरूर हुआ और होता जा रहा है।

ईसाइयों में एक सम्प्रदाय है, जो सम्भवतः रूस में अधिक पाया जाता है। यह समझता है कि पाप करना बहुत जरूरी है, क्योंकि बिना इसके ईश्वर की पूरी दया, आशीर्वाद और क्षमा का उपभोग असम्भव है। मुसलमानों का खुदा भी बड़ा मुआफ करने वाला है। हिन्दू तो मिनट-मिनट पर अपने पूर्वकृत अपराधों को धोकर बहा सकते हैं। इसलिए ईश्वर और धर्म से बुराइयों की रोक-थाम नहीं हुई, न हो सकती है। ऐसे आदमी बहुत हैं जो बुराई करने से ईश्वर से तभी तक डरते हैं जब तक उन्हें कोई देखता हो। अगर कोई आदमी न देखता हो, तो ईश्वर को ताक पर रख कर सब कुछ कर सकते हैं। इसलिए समाज ईश्वर से बहुत बड़ी चीज है। हम तो रात-दिन पादरी साहब, मौलवी साहब और पण्डित महोदय को यही पुकारते सुनते हैं कि अब धर्म का ह्रास हो रहा है, लोगों में से ईश्वर का डर कम होता जाता है, धर्म-कार्यों के लिए रुपया नहीं मिलता, चढ़ावा कम आता है, कथा और मालूद में पहले की सी भीड़ें नहीं होतीं।

ज्ञातव्य यह है कि ज्यों-ज्यों विद्या-बुद्धि बढ़ती जाती है, विद्या सुलभ होने के कारण अधिक आदमियों में फैलती जाती है, त्यों-त्यों ईश्वर का डेरा दूर हटता जाता है। अब बेचारा रोग-शय्या पर पड़ा अपने जीवन की घड़ियाँ गिन रहा है। लेकिन यह तो हँसी मात्र है। न ईश्वर कभी था, न है, न हो सकता है।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि जब लोग यह समझ लेंगे कि समाज के नियमों को तोड़ने से उनकी भी हानि है, अगर हम किसी को मार डालेंगे तो उसके परिवार के लोग हमें मार डालेंगे, तो समाज में मारकाट सर्वत्र फैल कर मनुष्य का सामाजिक जीवन दूभर कर देगी। यह ज्ञान मनुष्य को बुराई से रोकता है और ज्यों-ज्यों ज्ञान बढ़ेगा त्यों-त्यों अधिक रोकेगा। ईश्वरीय भय का पता उपासरों, खानकाहों, ननेरीज, मन्दिर, मस्जिद और गिरजों में कुछ दिन रहकर देखो तो ठीक-ठीक मिल जायेगा। अगर कहोगे कि किसी की हत्या मत करो, इससे ईश्वर अप्रसन्न होगा और इस लोक और परलोक में तुम्हें दण्ड मिलेगा, तो तुम्हारी कोई न सुनेगा और न अब सुनता है।

'हमको मालूम है, जन्नत की हक़ीक़त, लेकिन
दिल के खुश रखने को 'ग़ालिब' ये ख़्याल अच्छा है।'

—महाकवि ग़ालिब

इसलिए अशिक्षित जनसमूह को चाहे ज्ञानवान् और समझदार बना कर बुराइयों से रोकें, चाहे लट्ठ के बल उन्हें पशुओं की तरह हाँकते रहें, ईश्वर और धर्म से कुछ होना-जाना नहीं है।

हम मानते हैं कि जनता को शिक्षित बनाने का काम एक तो श्रम-साध्य है, दूसरे

धन-पात्र, धर्मयाजक और सरकार इन्हें वास्तविक सज्ञान प्राणी बनाना नहीं चाहती, नहीं तो हमारे सामने रूस है, जिसे हम हूस कहा करते थे। रूस में 1917 के पहले शिक्षितों की संख्या भारत से भी कम थी। आज शिक्षितों की संख्या वहाँ संसार के सब बड़े देशों से अधिक है।

अगर आज हम न्यायालयों को हटा दें तो मालूम हो जाये कि ईश्वर और धर्म मनुष्य-समाज की कितनी रक्षा करते हैं। आज भी ज्ञान-वृद्धि होने पर लोग अपनी वासनाओं और इच्छाओं के ऐसे दास हो गये हैं कि समाज के नियमों को तोड़े बगैर नहीं रहते; तो पिछले समय के कम ज्ञान वाले लोग ज्यादा उद्दण्ड और प्रचण्ड होंगे, इसमें सन्देह नहीं। इन्हें सदा संस्कृति के नियमों को पालन करने के लिए दण्ड बाध्य करता रहा है, न कि कल्पित ईश्वर और निर्मूल धर्म? बालक हौवा से डर जाता है, लेकिन जवान होने पर वह उसकी शक्ति को समझ जाता है। लड़कियाँ गुड़िया खेल सकती हैं, पर युवतियाँ गुड़ियों का खेल नहीं पसन्द करतीं। अब संसार में ईश्वर और धर्म का तमाशा बहुत दिन नहीं टिक सकता।

कल मुझसे एक लड़के ने प्रश्न किया 'आपकी बात सत्य होने पर भी यदि कोई ईश्वर और धर्म को माने तो आपकी इसमें क्या हानि?' मैंने हँसकर कहा कि मेरे वैयक्तिक हानि का प्रश्न नहीं है, न मैं किसी पर दबाव डालता हूँ कि मेरी बात मान ही ले। यहाँ बात है समाज के हानि-लाभ की, उन्हीं लोगों को इससे हानि पहुँचती है, जो इस भ्रम में पड़े हैं। बात को बिना समझे मान लेने और उसके अनुकूल चलने में ज्ञान की वृद्धि रुकती है। ईश्वर और धर्म के नाम से जो समय नष्ट किया जाता है, वह समाज-सेवा में लगाया जा सकता है। झूठे भय से काम करने की अपेक्षा सच्चे भय और भाव से काम करना अधिक अच्छा और पवित्र है। समाज को सुसंगठित और शृंखलित रखने के लिए, हमें समाज के नियमों को ज्ञान के आधार पर मानना उचित है और कल्पित ईश्वर के भय से डरना बच्चों की तरह 'झोली वाले बाबाजी' से डरना है। एक ज्ञान की जागृतावस्था है और दूसरी अज्ञान की निद्रित परिस्थिति है। जो लोग ईश्वर और धर्म पर विश्वास न रखकर अपने मतलब के लिए रात-दिन झूठ बोलते हैं, ठगी करते हैं, आदमी की दृष्टि बचाकर किसी भी समाजद्रोही काम को कर लेते हैं, वे दूसरों को ईश्वर और धर्म का भय दिखाते फिरते हैं, यह क्या प्रत्यक्ष जनता को धोखा देना नहीं है? यह कहना गलत है कि लोगों के जी से ईश्वर का भय निकाल देना, समाज को नष्ट-भ्रष्ट कर डालेगा। ऐसा ही फ्रांस के विद्वान वाल्टेयर ने भी कहा था कि 'अगर ईश्वर न हो तो हम एक ईश्वर की कल्पना करके रखेंगे। क्योंकि साधारण जनसमूहों को ईश्वर की जरूरत है।' लेकिन इसका ठीक उत्तर एक रूसी विद्वान 'मिकाईल बेकुनिन' ने यह दिया कि 'अगर ईश्वर हो भी तो हम उसे अर्द्धचन्द्र देकर

निकाल बाहर करेंगे, क्योंकि वह बुराइयों की जड़ है'। इस विवाद को हम अच्छी तरह समझ लें तो कूटनीति के आसरे हमें ईश्वर को बनाए रखने की हानि और सच्चाई के निमित्त उसके हटा देने के लाभ विस्पष्ट हो जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं। कल्पित ईश्वर ने चाहे सहस्रों वर्ष पहले जंगली लोगों को कितना भी लाभ पहुँचाया हो, परन्तु आज तो हमें उससे हानि ही हानि नजर आती है।

हमारा विपक्षी कहता है कि 'आप तो ऐसी वदतो-व्याघातपूर्ण बातें कहते हैं, जिनमें परस्पर सामंजस्य नहीं दीखता। एक ओर तो आप कहते हैं कि मनुष्य अपनी सहज समझ और वासनाओं से प्रेरित और शासित होता है, उन्हीं के अनुसार चलता है, बुद्धि और ज्ञान का अनुमान करना कम पसन्द करता है, दूसरी ओर यह भी कहते जाते हैं कि बुद्धि और ज्ञान के आधार पर संस्कृति की रक्षा करते रहो, उसका साथ देते रहो। आपको यह भी याद रखना चाहिए कि फ्रांस की क्रान्ति में धर्म को हटा दिया गया था, पर यह बात चल न सकी। अब रूस ने धर्म का पूरा बहिष्कार किया है, देखें यह बहिष्कार कितने दिन चलता है। सच तो यह है कि मनुष्य धर्म बिना जी नहीं सकता। आप कहते हैं कि धर्म एक रोग है, जो मनुष्य की नाड़ियों को बेकार कर डालता है और वह मनुष्य के भीतर घुस बैठा है, इस रोग के हटाने में ही भलाई है। लेकिन आपने यह नहीं सोचा कि इस रोग को दूर कर देने से और कौन-कौन से घातक रोग मनुष्य में घुस बैठेंगे।'

कुछ लोग ऐसे हैं, जिन्हें धर्म के साथ ऐसा प्रगाढ़ प्रेम है, जैसे नशेबाज को नशे के साथ। यह लोग धर्म को नहीं छोड़ सकते। इन्हें चाहे जितना समझावें यह न समझेंगे, लेकिन अधिकांश लोग ऐसे हैं जो धर्म के पीछे इतने दीवाने नहीं हैं। यह लोग सामाजिक नियमों को अर्थात् संस्कृति के नियमों को इसीलिए नहीं तोड़ते कि धर्म उन्हें धमकी देता रहता है, रिश्वत का लालच दिखाता रहता है और बहलाता रहता है। वह लोग धर्म की उसी समय तक परवा करते हैं, जब तक वह समझते हैं कि सचमुच कोई बाधा देने वाली वस्तु धर्म है। जहाँ धर्म की सत्यता को स्वीकार करने से उनका दिल हटा कि वह बागी हो जाते हैं। यह फिर धर्म की परवा नहीं करते, न इन पर किसी तर्क-वितर्क का प्रभाव पड़ता है। इनके हृदयों से धर्म का भय उठ जाता है, क्योंकि यह देखते हैं कि दूसरे लोग भी धर्म से नहीं डरते। इस तरह धीरे-धीरे धर्म का बनावटी डर उठता जाता है, चाहे हम धर्म और ईश्वर के विरुद्ध कुछ लिखें या न लिखें।

पुनः निस्सन्देह लोग तर्कों और युक्तियों की बहुत कम परवा करते हैं, अपनी स्वाभाविक समझ के नितान्त वशवर्ती होते हैं, उसी के अनुसार जो इच्छा उत्पन्न होती है, उसी को पूरा करने में दत्तचित्त हो जाते हैं। लेकिन क्या धर्म के पक्षपातियों ने कभी

अपने दिल से यह पूछा है कि क्या मनुष्य का ऐसा होना अच्छा है? क्या उनकी अन्तरात्मा को ऐसी जरूरत भान होती है कि वह धोखे में कम से कम जब तक रह सकें, रहे? सामाजिक जीव 'मनुष्य' के स्वभावों और विकास के इतिहास आदि विषयों का ज्ञाता पण्डित क्या आपको ऐसे मनुष्य के मस्तिष्क को आवृत्त करने वाली हड्डी की दशा बता सकता है, जिसकी शिराओं को बाल्यकाल से ही कड़ी पट्टी बाँध कर खराब कर दिया गया हो। जो लोग हाथों में फँसे हुए गहने पहने रहते हैं, क्या उनकी नाड़ी का ठीक पता वैद्य को मिल सकता है? जरा निर्भय, निश्चल, चमकते हुए, स्वस्थ चेहरे वाले बालक की तीव्र बुद्धि का और नवजवान की कमजोर समझ का मुकाबला करो और समझो, तो तुमको मालूम होगा कि इस बुराई के भीतर एक प्रधान कारण धर्म भी है। होश सँभालते ही बच्चे के लिए 'ईश्वर' के नाम के दूसरे हौवे का डर खड़ा कर दिया जाता है। उसके हृदय में दूसरे लोक, नरक और स्वर्ग की चिन्ता पैदा करके उसका दिमाग खराब कर दिया जाता है। बड़े होने पर आदमी के सिर में बाप-दादों के ढंग, भाव, विचार आप ही घुस बैठते हैं, लेकिन हमारे भोले भाई उस समय तक ठहरना नहीं चाहते। बाल्यकाल से सन्तान के सर में धर्म, ईश्वर और परलोक को ठूँसना आरम्भ कर देते हैं, जबकि न उसमें इन बातों के समझने की बुद्धि होती है और न उसका इनमें जी ही लगता है। बच्चों में लैंगिक (sexual) समुन्नति का रोकना और बहुत जल्द धर्म का रोगी बना डालना, आजकल लोग शिक्षा का सार समझते हैं। बच्चों में स्वतंत्र विचार की शक्ति की वृद्धि को रोकना और मानसिक शक्ति में धर्म-रूपी घुन लगा देना, कोई चतुराई की बात नहीं है। नरक की धमकी से बच्चे के कलेजे को कमजोर बना देना हितैषी माता-पिता का काम नहीं है, यह तो एक प्रकार की शत्रुता है, मनुष्य जीवन की उन्नति को रोकना है। जिस धर्म में जितनी अधिक कट्टरता होती है, उस धर्म में उतने ही अधिक मूर्ख होते हैं। एशिया में खासकर निकट पूर्व के देशों में धार्मिक कट्टरता के कारण विज्ञानवेत्ताओं और वैज्ञानिक आविष्कर्त्ताओं का कहीं पता नहीं है। भारत में ही हम देखते हैं कि धर्म की कट्टरता हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों में ज्यादा है, इसलिए मुसलमानों में हिन्दुओं से कहीं अधिक मूर्खता पाई जाती है। हिन्दुओं में चाहे वैज्ञानिक आविष्कार करने वाले मिलें, पर मुसलमानों में ढूँढ़ने से नहीं निकलेंगे। यह प्रत्यक्ष प्रमाण इस बात का है कि मनुष्य अपने को धार्मिक कट्टरता से मूर्ख बना डालता है, अन्धविश्वासी कर लेता है और किसी भी सच्ची खोज के लायक नहीं रखता। राजनीतिज्ञ-जगत् जानता है कि हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता प्राप्त करने के बदले मुसलमानों ने इसकी गुलामी को स्थिर रखने में अधिक परिश्रम किया है। इसका कारण धार्मिक कट्टरता या धर्मान्धता का आधिक्य ही है। मिस्र और टर्की में धर्मान्धता के विनाश के साथ-साथ उनका उत्थान हुआ है, भारत में धर्मान्धता के

साथ-साथ हमारा पतन होता जा रहा है। फिर भी ऐसे बुद्धि-भाण्डागारों की कमी नहीं है, जो कहते हैं कि हमें कुरान या वेद में शान्ति मिलती है ।

यदि मनुष्य बाल्यकाल से ही आँखें और कान बन्द करके धार्मिक बेहूदगियों को अपने सर में कूट-कूट कर भरता रहा, धार्मिक पुस्तकों के प्रत्यक्ष वदतोव्याघातों को नहीं देख सका; उसका मनुष्यत्व से गिर जाना स्वाभाविक है। पशु-बुद्धि को समाज के हित के लिए उच्छृंखल न होने देने का काम ज्ञान का है, ज्ञान के सर पर जब आरम्भ से ही कुठाराघात होने लगे तो बेचारे ज्ञान का प्राण हमारे घर में कैसे बच सकता है? हमारे देश में ऐसे पापिष्ट हृदयों की कमी नहीं है जो देश के 90 प्रति सौ भूखमरतों की चिन्ता से एक क्षण भी व्यथित नहीं होते, किन्तु परलोक की चिन्ता में सारा जीवन नष्ट कर डालते हैं। जिस देश में अन्धे ही बसते हों उस देश में निश्चय ही कान की महिमा आँखों से अधिक होगी। यहाँ बेचारा ज्ञान कैसे ठहर सकता है? 'धोबी बस कर क्या करे, दिक अंम्बर के ग्राम।'

लोग स्त्रियों को 'नाकिसुल-अक्ल' कहते हैं, कहीं-कहीं भले आदमियों ने तो उनके सर बहुत से स्वाभाविक दोष मढ़ दिये हैं। एक ज्ञान-राशि हिन्दू तो कहता है 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी।' जैन हजरत फरमाते हैं कि स्त्रियों की मुक्ति ही नहीं होती और यहूदियों में तो प्रार्थना की जाती है, 'हे प्रभो, आपने बड़ी कृपा की, हमें स्त्री नहीं बनाया।' क्या यह सब बेहूदगियाँ हमें धर्म को धिक्कारने की ओर प्रवृत्त नहीं करतीं? हम स्त्रियों के सम्बन्ध में अनेक निबन्ध अनेक मासिक पत्रिकाओं में लिख चुके हैं और एक स्वतंत्र पुस्तक के लिखने का विचार है, जिनमें स्त्रियों पर पुरुषों के दीर्घकाल व्यापी अत्याचार को ऐतिहासिक प्रमाण के साथ दिखाया जाये, पर यह सब जीवन और स्वास्थ्य के हाथ की बात है। अस्तु, हम यहाँ स्त्रियों के पक्ष में लिखकर विषयान्तरित नहीं होना चाहते; पर इतना हम जरूर कहेंगे कि स्त्रियों की निर्बलता और मूर्खता के जिम्मेदार पुरुष हैं, स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक मूर्ख हैं, इसलिए धार्मिक ठगों के हाथों यह अधिक ठगी जाती हैं। मेरे प्राण प्यारे धर्मान्धताग्रस्त मनुष्य भाइयों! एक बार धर्म को और ईश्वर को 25 वर्ष के लिए त्याग कर देखो, अगर आप अच्छे न बने तो फिर इन्हीं खयाली पुलाव के पकाने में लग जाना। अगर आज आप नहीं छोड़ते तो आपकी आगे आने वाली आपसे अधिक चतुर सन्तति इन ढकोसलों को निस्सन्देह समाज से बहिष्कृत करेगी। आजकल पुरोहिती-ठगी पहले की तरह नहीं चलती, यह प्रमाण है हमारी भविष्यवाणी के सिद्ध होने का।

अफीमची की अफीम छुड़ाना कठिन है, इसे मैं समझता हूँ, किन्तु वह स्वयं चाहे तो धीर-धीरे छोड़ सकता है। एकदम अगर किसी का दुर्गुण छुड़ाया जाता है तो वह दुराचारी छिप कर अपनी दुर्वासना को पूरी करने लगता है, जैसा कि रूस में देखते हैं।

अनेक मूर्ख घरों में छिप-छिप कर नमाजों में अपना समय खराब किया करते हैं।

ईश्वर और धर्म के ढकोसले को छोड़ने के बाद हम सच्ची अवस्था में आ जाते हैं, हम निर्बलता को समझ कर उसके दूर करने के लिए अपने हाथ-पैरों का हिलाना सीखते हैं। संध्या, पूजा, व्रत और नमाज के जोर से अपने दुखों के मिटाने की बेहूदा हरकत छोड़ देते हैं। हम समझने लगते हैं कि मैं अनुपचार, विवश और तुच्छ प्राणी हूँ। प्रकृति का ज्ञान अथाह है, लेकिन उससे कोई ईश्वर या धर्म मेरी मदद और रक्षा नहीं कर सकता, इसलिए मैं स्वयं अपनी रक्षा का उपाय सोचूँ, अपने हित के लिए काम करूँ।

पश्चिम के जितने आविष्कर्त्ता हुए हैं, उन्होंने चाहे ईश्वर का खण्डन न किया हो, पर यह जरूर है कि उन्होंने नमाज पढ़ते हुए कोई आविष्कार नहीं किया; बल्कि अनेक आविष्कार करने वाले वैज्ञानिकों को नमाज पढ़ने वालों ने सताया जरूर है। जब कोई नवयुवक घर छोड़कर निकल जाता है और उसके सामने कोई शरण-स्थल नहीं रहता तब वह श्रमशील और काम का आदमी जल्दी बनता है।

आदमी सदा बालक नहीं रह सकता। वह सच्चे ज्ञान की प्राप्ति से श्रमशील, स्वतंत्र जवान बनता जा रहा है, उसकी इस उन्नति और इस उत्कर्ष में बाधा डालना अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारना है।

भाग्य एक और नष्ट वस्तु है। इससे आदमी निकम्मा और आलसी हो जाता है। वह लगातार अदृश्य शक्ति का ही आश्रय ढूँढ़ने लगता है। किसी भी घटना का, अच्छी हो या बुरी, कारण नहीं ढूँढ़ता। भाग्य पर भरोसा करके बैठ जाता है। अगर आदमी सावधान हो जायेगा तो अपने लिए और समाज के लिए हितकारी कामों के करने में दत्तचित्त रहेगा। स्वर्ग और ईश्वर के भूत को जिन, फरिश्ते, यज्ञ आदि के लिए छोड़कर आप अपनी पृथ्वी पर ही अपना स्वर्ग बनाने में लग जायेगा। ईश्वर, धर्म और भाग्य का वशीभूत न रहेगा।

'सर्वम् परवशं दुखम् सर्वम् आत्मवशं सुखम्'

('भविष्य', जुबली अंक, अक्टूबर 1932 ई.)

राहुल फाउण्डेशन
लखनऊ

ISBN: 978-81-87728-34-4
मूल्य : 20.00